* ओ३म् *

ऋग्वेद-भाष्य का नमूना

सम्पादक का निवेदन

—*—

महर्षि दयानन्द ने अपने अल्पकालीन जीवन में अनेक बड़े-बड़े कार्य किये। पहिले वे सत्यशील बालक थे। युवावस्था में वे सत्य के अन्वेषक बने। फिर सत्य के प्रबल प्रचारक के रूप में संसार ने उनके दर्शन किये। भारतीय स्वराज्य-संग्राम के आदिम नायक, भारतीय समाज-सुधार-आन्दोलन के आदिम विधायक, स्त्री-शिक्षा, गो-रक्षा, अछूतोद्धार, संस्कृत-भाषा-प्रचार, शुद्धि, संगठन, आदि अनेकानेक प्रगतियों के आदिम-प्रवर्तक, आर्य समाज संस्थापक, आर्ष-साहित्योद्धारक, वेद-भाष्यकार, आदि-आदि अनेक रूपों में हमें उनके दर्शन होते हैं। उनका प्रत्येक रूप दिव्य तेज से युक्त है। उस पर आत्म-विश्वास और सफलता की स्पष्ट-छाप अंकित है।

लेखक के रूपमें वे महान लेखक हैं, वक्ताके रूप में वे सर्वश्रेष्ट वक्ता हैं, प्रबन्धकों में उत्तम प्रबन्धक हैं, और शोधकों में महान संशोधक। उनका प्रत्येक रूप महानता से युक्त है। यद्यपि महर्षि दयानन्द भी एक मनुष्य ही थे, तथापि वे महामानव थे, दिव्य योग-विभूतियों से युक्त थे, उनके प्रत्येक कार्य पर विचार करके, यह तथ्य उत्तमतया सम्पुष्ट होता है।

अनेक बार यह विचार हमें आन्दोलित किया करता है, कि महर्षि के वेद-भाष्य के महत्व के विषय में विस्तार पूर्वक लिखें। फिर भी प्रस्तुत-प्रसंग में तो हमें संक्षेप से ही काम लेना होगा। इस विषय का विस्तृत उल्लेख तो फिर कभी, किसी स्वतन्त्र-प्रसंग में ही किया जा सकेगा।

योगीराज श्री अरविन्द घोष ने ठीक लिखा है:-

"तीसरी भारतीय सहायता तिथि में कुछ पुरानी है; परन्तु मेरे वर्तमान प्रयोजन के अधिक नजदीक है। यह है वेद को फिर से एक सजीव धर्म-पुस्तक के रूप में स्थापित करने के लिये आर्य समाज के संस्थापक स्वामी दयानन्द के द्वारा किया गया अपूर्व प्रयत्न। दयानन्द ने पुरातन भाषा-विज्ञान के स्वतन्त्र प्रयोग को अपना आधार बनाया, जिसे कि उसने निरुक्त में पाया था। स्वयं एक संस्कृत का महाविद्वान होते हुए, उसने उसके पास जो सामग्री थी, उस पर अद्भुत शक्ति और स्वाधीनता के साथ विचार किया। विशेष कर प्राचीन संस्कृत भाषा के अपने उस विशिष्ट तत्व का उसने रचनात्मक प्रयोग किया, जो कि सायण के-"धातुओं की अनेकार्थता" इस वाक्यांश से बहुत अच्छी तरह से प्रकट हो जाता है। हम देखेंगे कि इस तत्व का, इस मूल सूत्र का ठीक-ठीक अनुसरण वैदिक ऋषियों की निराली प्रणाली समझने के लिये बहुत अधिक महत्व रखता है।"

[वेद रहस्य पृष्ठ-४१]

फिर लिखते हैं:—

"दयानन्द की मन्त्रों की व्याख्या इस विचार से नियन्त्रित है कि वेद धार्मिक, नैतिक, और वैज्ञानिक सत्य का एक पूर्ण ईश्वरप्रेरित ज्ञान है। वेद की धार्मिक शिक्षा एक देवतावाद की है। और, वैदिक देवता एक ही देव के भिन्न-भिन्न वर्णनात्मक नाम हैं। साथ ही वे देवता उसकी उन शक्तियों के सूचक भी हैं, जिन्हें कि हम प्रकृति में कार्य करता हुआ देखते हैं। और, वेदों के आशय को सच्चे रूप में समझ कर, हम उन सभी वैज्ञानिक सच्चाइयों पर पहुँच सकते हैं, जिनका कि आधुनिक अन्वेषण द्वारा आविष्कार हुआ है।"

[वेद रहस्य पृष्ठ- ४१]

एक स्थान पर लिखते हैं:—

"दयानन्द ने ऋषियों के भाषा सम्बन्धी रहस्य का मूल सूत्र हमें पकड़ा दिया है और वैदिक धर्म के एक बन्द्र-भून विचार अर्थात अनेक देव एक परम देव में आ जाते हैं, पर फिर से बल दिया है।"

[वेद रहस्य पृष्ठ - १३]

इस प्रकार श्री अरविन्द महर्षि दयानन्द की वेद भाष्य शैली की मुक्त कण्ठ से प्रशंसा करते हैं। महर्षि दयानन्द के वेद भाष्य से पूर्व सायणाचार्य, उव्वटाचार्य और महिधराचार्य के वेद भाष्य यहां प्रचलित थे। ये सभी भाष्य अश्लीलता, पशुहिंसा, आदि दोषों से तो परिपूर्ण हैं ही, साथ ही इनमें तर्क, विरुद्ध, सृष्टि-क्रम विरुद्ध और अनीति वर्धक तथा वेदों को सब प्रकार से अत्यन्त हेय सिद्ध करने वाली बातों की भी बहुत भरमार है। अट्ठारहवीं शताब्दि में जो वेदों के बहुत से अनुवाद योरपीय विद्वानों ने अंग्रेजी, फ्रेंच तथा जर्मन भाषाओं में तैयार किये थे, वे वास्तव में इन सायण, महीधर और उव्वट के दोषपूर्ण भाष्यों के ही दोषपूर्ण अनुवाद हैं। महर्षि दयानन्द ने इन दोषपूर्ण वेद-भाष्यों के खण्डन और वेदों के सत्य सत्य अर्थों को दर्शाकर मानव-जाति को पुनरपि वैदिक चरचइयों से लाभान्वित करने के उदात्त विचार से ही अपने वेद-भाष्य-कार्य की प्रवर्तना की थी। और अपने इस कार्य में उन्हें आशातीत सफलता मिली है—यह सत्य सिद्ध हो चुका है।

सायण के विषय में योगीराज श्री अरविन्द क्या कहते हैं? पाठक संक्षेप में यह भी जान लें:—

"सायण-भाष्य द्वारा ऋषियों का, उनके विचारों का, उनकी संस्कृति का, उनकी अभीप्साओं का, एक ऐसा प्रतिनिधित्व हुआ है, जो इतना संकुचित और दारिद्र्योपहत है कि यदि उसे स्वीकार कर लिया जाय, तो वह वेद के सम्बन्ध में प्राचीन पूजा भाव को, इसकी पवित्र प्रमाणिकता को, इसकी दिव्य ख्याति को, बिलकुल अबुद्धिगम्य कर देता है, या इसे इस रूप में रखता है कि इसकी व्याख्या केवल मात्र यही हो सकती है कि यह उस श्रद्धा की एक अन्धी और बिना ननुनच किये मानी गई परम्परा है, जिस श्रद्धा का प्रारम्भ एक मौलिक भूल से हुआ है।"

[वेद रहस्य पृष्ठ—२६]

कैसे चुभते हुए शब्द हैं? और देखिये:—

"वेद के सब संभव अर्थों में से इस निम्नतर अर्थ के साथ ही वेद को अन्तिम तौर पर और प्रमाणिकतया बान्ध देना, यह है, जो कि सायण के भाष्य का सब से अधिक दुर्भाग्य पूर्ण परिणाम हुआ। कर्मकाण्ड परक व्याख्या को प्रधानता ने पहिले ही भारत वर्ष को अपने सर्व श्रेष्ठ धर्म-शास्त्र (वेद) के सजीव उपयोग से और उपनिषदों के समस्त आशय को बतलाने वाले सच्चे मूल सूत्र से वंचित कर रखा था, सायण के भाष्य ने पुरानी मिथ्या धारणाओं पर प्रमाणिकता की मोहर लगा दी, जोकि कई शताब्दियों तक नहीं टूट सकती थी। और इसके दिये हुए निदान उस समय, जब कि एक दूसरी सभ्यता ने वेद को ढूण्ड कर निकाला और इसका अध्ययन प्रारम्भ किया, युरोपियन विद्वानों के मन में नई-नई गलतियों के कारण बने।"

[वेद रहस्य पृष्ठ—२६]

श्री अरविन्द की 'स्वामी दयानन्द और वेद' नामक पुस्तक के कुछ उद्धरण और लीजिये:—

"स्वामी दयानन्द ने वेद को अपनी आधार भूत दृढ़-चट्टान के रूप में अपनाया। वह वेद को जीवन का पथ-प्रदर्शक, आन्तरिक सत्ता का नियम और बाहर के कार्यों का प्राणदाता समझता था। इतना ही नहीं वह मनुष्य मात्र के ईश्वर विषयक ज्ञान के लिये और उस दिव्य पुरुष के प्रति अपने सम्बन्धों के लिये, इस वेद को शाश्वत सत्य वचन मानता था, जिससे अपने सम्बन्धों को दृढ़ किया जा सकता है।"

[पृष्ठ—१६]

और देखिये—

"आज जब एक ओर पाश्चात्य विद्वान् सायण के भाष्यों व निर्देशों के आधार पर इन्हें प्राकृतिक देवों के प्रति आधारित कर्मकाण्डपरक सूक्तों की संग्रह पुस्तक मानते हैं, तो दूसरी ओर भारतीय आत्मा ने दयानन्द की दिव्य-दृष्टि से देखते हुए सदियों से चली आ रही इस भूल को सुधारने का बुद्धिमत्ता से काम लिया। इसने देखा कि वेद तो अनादि प्रभुदत्त दैवी प्रकाश का अन्तःप्रेरित ज्ञान

है—जो मानव जाति के लिये प्रभु की अमूल्य देन है। अतः अब भारतीयों को इन दोनों में से एक का चुनाव कर लेना पड़ेगा।"

[पृष्ठ—१८, १६]

अब एक स्थल और भी देखिये:—

"दयानन्द कृत अर्थों पर यह विपत्ति उठाई जाती है कि ये अर्थ सत्य नहीं; अपितु कल्पना कुशल, पाण्डित्य और दक्षता का मनमाना अस्वाभाविक रचना जाल हैं, जिसकी शैली स्वच्छन्दता एवं अप्रासंगिकता से परिपूर्ण है, जिसे अन्यों की तर्कबुद्धि कदापि नहीं मान सकती।

* * *

दयानन्द के कार्यों का अपलाप करने वाले आलोचकों के मुख से क्या यह शोभा देता है कि वेदों के ये अर्थ दयानन्द ने अपनी कल्पना और प्रखर दक्षता पूर्ण चतुराई के साथ किये हैं। सायण के परम्परागत भाष्य को स्वीकार करने वाले व्यक्तियों को यह शोभा नहीं देता। क्योंकि महान एवं स्वच्छन्द पाण्डित्य पूर्ण दशा का, न्याय निर्णय, सुनिश्चित रुचि, निर्दोष एवं तुलनात्मक निरीक्षण और साधारण एवं सहज बुद्धि की उपेक्षा कर पूर्वकल्पित सिद्धान्त के मूल-ग्रन्थ का अर्थ तोड़ मरोड़ कर यह भाष्य किया गया है, जिसके कर्त्ता निःसन्देह रूप में आचार्य सायण हैं।"

[पृष्ठ—१६, २०]

श्री अरविन्द ने सायण भाष्य के दुष्परिणामों और दोषों को बहुत अधिक विस्तार पूर्वक दर्शाया है। जो सज्जन विशेष देखना चाहें, वे उनके प्रसिद्ध ग्रन्थ 'वेद-रहस्य' तथा 'स्वामी दयानन्द और वेद' में देखने का कष्ट करें।

वैदिक सम्पत्ति के यशस्वी लेखक श्री पण्डित रघुनन्दन शर्मा लिखते हैं:—

"जब तक स्वामी दयानन्द ने बुद्धि, तर्क, और धातु के सहारे अर्थ नहीं किया था, तब तक लोग वेदों से अनेक ऊल-जलूल बातें निकाला करते थे। किन्तु उनके आर्षप्रणाली से अर्थ करते ही वेदों का उज्वल रूप सामने आ गया। और वेदों का अन्तरंग प्रकाशित हो उठा। तथा हमारे सामने अर्वाचीन, मध्यमकालीन और प्राचीन वेदार्थों का नमूना उपस्थित हो गया।"

[वैदिक सम्पत्ति पृष्ठ—५८५]

एक समय था जब कि युरोपियन विद्वानों में वेद भाष्य करने की एक भारी होड़-सी लग गई थी और सभी ने सायण, महीधर आदि के दूषित भाष्यों के आधार पर वेदों के भाष्य अंग्रेजी आदि में रचे थे। और वेदों के विरुद्ध जी भर कर दोषारोपण किये थे। परन्तु महर्षि दयानन्द के कार्यों का यह शुभ परिणाम आज हमारे सामने है कि युरोपियन लोगों ने वेदों के विरुद्ध दोषारोपण का वह पुराना ढंग अब छोड़ दिया है। उनके वेद विषयक विचारों में उत्तम परिवर्तन आता जा रहा है। और, वे अब वेद के विषय में अपने विचारों के प्रकाशन में अधिक सावधानता रखने लगे हैं।

यद्यपि अधिक लेख विस्तार का अवकाश यहां नहीं है, तथापि पाश्चात्य वेद विचारकों में विशेष प्रसिद्ध प्रो० मोक्षमूलर [मैक्समूलर] के विचार भी संक्षेप में यहां दर्शाने का लोभ हम संवरण नहीं कर सकते। प्रोफेसर मोक्षमूलर लिखते हैं:—

"मुझे आर्य समाज संस्था के साथ पूरी सहानुभूति है। आर्य सामाजिक पुरुषों को उचित है कि जो कुछ कार्य स्वामी जी कर गये, उसी पर सन्तुष्ट न रहें। परन्तु उस कार्य को जारी रखें, जोकि वे अधूरा छोड़ गये हैं।"

[प्रोफेसर मोक्षमूलर के आर्य समाज लन्दन के प्रधान के नाम ७-७-८८ के पत्र से उद्धृत]

महर्षि द्वारा विरचित प्रसिद्ध ग्रन्थ 'ऋग्वेदादि भाष्य-भूमिका' के विषय में प्रो० मोक्षमूलर महोदय अपनी पुस्तक—"India what can it teach us" अर्थात् भारत से हमें क्या शिक्षा मिल सकती है ? में पृष्ठ ७४ पर लिखते हैं:—

"हमें तमाम संस्कृत साहित्य को दो भागों में विभाजित करना चाहिये, जोकि ऋग्वेद से आरम्भ होता है और दयानन्द की ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका पर समाप्त होता है। स्वामी जी की ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका बहुत मनोरंजक पुस्तक है।"

यहां प्रो० मोक्षमूलर बहुत आदर के साथ महर्षि की पुण्य कृति—ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका को संस्कृत साहित्य के अन्तिम ग्रन्थ के रूप में उद्घोषित करते हैं।

एक बार प्रो० मोक्षमूलर महोदय ने महर्षि दयानन्द का जीवन-चित्र लिखने का उपक्रम भी किया था। कदाचित् वह ही सर्वप्रथम गम्भीर प्रयास था, जोकि महर्षि दयानन्द का जीवन-चरित्र लिखने के लिये किया गया था। इस विषय में प्रो० मोक्षमूलर महोदय ने 'परोपकारिणी सभा' के उस समय के मन्त्री श्री पण्डित मनोहरलाल विष्णुलाल पण्ड्या से पत्रव्यवहार भी किया था। इससे स्पष्ट है कि महर्षि के व्यक्तित्व और कार्यों, विशेष कर वेदभाष्य सम्बन्धी कार्यों का, प्रो० मोक्षमूलर पर बहुत उत्तम प्रभाव हुआ था। अपने ग्रन्थ जीवन-चरित्र सम्बन्धी निबन्धों [Biographical Essays.] में महर्षि दयानन्द के विषय में लिखते हुए मोक्षमूलर महोदय लिखते हैं:—

"उसकी सम्मति में न केवल प्रत्येक विद्या वेद में पाई जाती है; अपितु वह इससे भी एक पग आगे गया है। उसने दूसरे लोगों को निश्चय करा दिया कि प्रत्येक वस्तु, जो जानने योग्य है, वेद में उसका उल्लेख पाया जाता है। अस्तु, विज्ञान के आधुनिक काल के आविष्कार भी जैसे—भाप से चलने वाले यन्त्र, रेल, तार, हवाई जहाज, ये सब बीज रूप में वैदिक ऋषियों को ज्ञात थे। क्योंकि वेद के अर्थ ईश्वरीय ज्ञान के हैं। इस लिये यह कैसे हो सकता है कि ये बातें परमात्मा से गुप्त रहें और वह मनुष्यों को इनका ज्ञान न दे। स्वामी जी को मनुष्य-जीवन के लिये वेद ऐसे ही थे, जैसे जहाज के वास्ते लंगर। उसका कथन था कि वेद की ओर वापिस चलो।"

महर्षि दयानन्द के ग्रन्थों को पढ़कर प्रोफेसर मोक्षमूलर ने वेदों के विषय में अपने विचारों को बहुत बदल लिया था। यही कारण है कि अपने उत्तर कालिन जीवन के ग्रंथों में मोक्षमूलर साहेब वेदों को गडरियों के गीत नहीं बताते; अपितु उनको श्रेष्ठ विद्याग्रन्थ स्वीकार करते हैं। अपने ग्रन्थ 'भारत से हमें क्या शिक्षा मिल सकती है' में पृष्ठ ११२ पर वे लिखते हैं:—

"मेरा यह दावा है कि संसार में मनुष्य मात्र के स्वाध्याय के लिये कोई पुस्तक ऐसी आवश्यक नहीं, जैसा कि वेद है। मेरा यह दावा है कि प्रत्येक मनुष्य जो आत्मज्ञान प्राप्त करना चाहे, या मानव इतिहास मालूम करना चाहे, या मस्तिष्क की उन्नति करना चाहे, तो उसके लिये वेद का स्वाध्याय करना अत्यन्त आवश्यक है।"

प्रो० मोक्षमूलर के ग्रंथों में से इस प्रकार के बहुत से उद्धरण दिये जा सकते हैं। विस्तार भय से हम यहाँ अधिक नहीं लिखते। फिर किसी दूसरे प्रसंग में लिखेंगे।

जब महर्षि दयानन्द ने वेदोद्धार और वेद प्रचार का कार्य आरम्भ किया और भारत की जनता ने प्रशंसापूर्वक उनके विचारों को ग्रहण करना आरम्भ किया, एवं जब भारत के अनेक स्थानों में आर्य समाजों की स्थापना का कार्य भी आशाजनक रूप में आरम्भ हो गया, तब महर्षि ने वेद-भाष्य के कार्य को भी आरम्भ करने का दृढ़ निश्चय किया और कार्य आरम्भ कर दिया।

निर्दोष वेद-भाष्य कार्य के सम्पादन के लिये जिन-जिन साधनों की आवश्यकता होती है, उनको जुटाना आज-कल के युग में भी बड़ा कठिन है। और तो और महर्षि के अपूर्ण वेद भाष्य को पूर्ण करना भी कठिन हो रहा है। ऐसी अवस्था में महर्षि दयानन्द के सामने जो-जो कठिनाइयां थीं, उनका अनुमान सहज में ही किया जा सकता है। महर्षि के समय में तो आज कल जैसी रेल, डाक आदि की उत्तम सुविधायें भी सुलभ न थीं। बड़े-बड़े पुस्तकालय न थे। आजकल के समान समाचार-पत्र न थे। अनुयाइयों की बड़ी संख्या न थी। किसी राजा महाराजा वा सरकार आदि का सहयोग न था। योग्य सहकारियों और कार्यकर्ताओं का भी अभाव था। और बहुत ही साधारण प्रकार के लोगों की सहायता से महर्षि को अपना कार्य करना पड़ा था। तथापि उन्होंने कार्य किया और सफलता पाई, एवं वेदभाष्य कार्य की चिरकाल से लुप्त-शैली के

पुनरुद्धार तथा प्रचार में वे सफल हुए, यह हम-आप सभी जान चुके हैं।

आज—जबकि छपाई और रेल-डाकादि की अनेक सुविधायें पहिले की अपेक्षा बहुत अधिक हैं, सहायक पुस्तकें भी अधिक सुलभ हैं और जनमत भी अधिक अनुकूल एवं उत्साह वर्धक है—तब भी वेदभाष्य का कार्य एक जटिलसमस्या के रूप में सबके सामने अपूर्ण पड़ा है। कोई भी उसे पूर्ण करने का साहस कर नहीं पा रहा। वाक्शूर पण्डित घोषणायें करते हैं। चन्दा-चटोर सभायें योजनायें बनाकर रुपया बटोरती हैं। तथापि वेदभाष्य का कार्य, वहीं रुका पड़ा है, जहाँ कि महर्षि ने अपने निधन के समय उसे छोड़ा था। इस से महर्षि के वेद-भाष्य-कार्य के महत्व को भली प्रकार आंका जा सकता है।

वेद-भाष्य-कार्य और अपने अन्य ग्रन्थों की पूर्ति के लिये यह तो आवश्यक ही था कि महर्षि अपने सहायकों की समुचित व्यवस्था करते; परन्तु तब सहायकों का मिलना भी तो आसान न था। अतः जो भी मिल सके, उन्हीं को साथ लेकर महर्षि ने कार्यारम्भ कर दिया। इन सहायकों में कुछ तो फरुखाबाद आदि स्थानों में महर्षि दयानन्द द्वारा संस्थापित पाठशालाओं में ही शिक्षित भी हुए थे। पण्डित भीमसेन शर्मा और पण्डित ज्वालादत्त भी उन्हीं में से थे।

महर्षि के सहायक-विद्वान् बहुत ही साधारण प्रकार के थे। अधिक योग्य पुरुषों के अभाव में ही महर्षि ने उन को अपना सहायक बनाया था। वे किस-किस प्रकार के थे? यह भी पाठक महर्षि के शब्दों में ही यहां थोड़ा-सा जान लें। "ऋषि दयानन्द के पत्र और विज्ञापन" नामक पुस्तक में पण्डित भीमसेन के विषय में महर्षि के ये उद्गार पाये जाते हैं:—

निष्कपट है। पृ० २६८

भाषा बहुत ढीली बनाता है। पृ० ३२४

भीमसेन के शोधे भये पुस्तकों में बहुत भूल निकलती है। पृ० ३४४

व्याकरण आदि शास्त्रों को पढ़ा है, उतना ही पांडित्य है, अन्यत्र बालक है। पृ० ३४५

भीमसेन की अत्यन्त अयोग्यता के कारण सब दिन के लिये निकाल दिया। पृ० ३६६

भीमसेन बकवृत्ति है। पृ० ३०५

भीमसेन काम के अयोग्य है। पृ० ४०८

आर्यसमाज में रखने योग्य नहीं। पृ० ५४४

दूसरे पण्डित से न्यायदर्शन पूरा करले। पृ० ५२२

समय-समय पर पण्डित ज्वालादत्त के विषय में महर्षि ने जो विचार प्रकट किये थे, 'ऋषि दयानन्दकेपत्र और विज्ञापन' नामक ग्रन्थ में ही उनका विवरण इस प्रकार है:—

शोधने में बहुत गलती रहती हैं। पृ० ३११

ये दोनों [भीमसेन और ज्वालादत्त] एकसे हैं, काम चोर हैं। पृ० ३७२

व्याकरण का अभ्यास कम है। पृ० ३७४,३७६

वैसा ही उस [भीमसेन] से ही विलक्षण, दम्भी, क्रोधी, हठी और स्वार्थ साधन तत्पर ज्वालादत्त भी है। मेरी समझ में भीमसेन का छोटा भाई ज्वालादत्त है। पृ०४०५

घर पै जाके दशगात्रादि मृतक कर्म कराके मुर्दाधान खाया करेगा। पृ० ४१६

पहिले जैसे भाषा नहीं बनाता। पृ० ४८८

अब भाषा अच्छी नहीं बनाता। घास काटता है। पदार्थ कुछ और है, भाषा बनाई कुछ और ही। पृ० ४८५

पण्डित भीमसेन और पण्डित ज्वालादत्तके अतिरिक्त जो अन्य समय-समय पर सज्जन महर्षि के सहकारी रहे थे, उनमें से कुछ के नाम इस प्रकार हैं:—

१—दिनेश राम
२—स्वामी पूर्णानन्द
३—पण्डित सहजानन्द
४—पण्डित लक्ष्मण शास्त्री
५—पण्डित रामानन्द ब्रह्मचारी
६—पण्डित शिव दयालु
७—पण्डित रामनाथ
८—मुन्शी समर्थदान

वेदभाष्य-कार्य की आरम्भिक रूप रेखा निश्चित् करने के पश्चात् महर्षि ने जो वेद भाष्य के नमूने का प्रथम अंक प्रकाशित किया था, उसके विषय में श्री देवेन्द्रनाथ मुखोपाध्याय लिखते हैं:—

"स्वामी जी ने ऋग्वेद के पहिले सूक्त का भाष्य जिस में गुजराती और मराठी भाषा में अनुवाद भी था, वेदभाष्य के नमूने के तौर पर प्रकाशित किया। जिसमें ऋग्वेद के पहिले मन्त्र—'अग्निमीडे पुरोहितम्' आदि के दो अर्थ किये थे। एक भौतिक दूसरा पारमार्थिक। उसकी भूमिका में लिखा था कि मैं सारे वेदों का इसी शैली पर भाष्य करूँगा। यह नमूना स्वामी जी ने काशी के पण्डित बालशास्त्री, स्वामी विशुद्धानन्द सरस्वती प्रभृति तथा कलकत्ता और अन्य स्थानों के पण्डितों के पास भेजा था, परन्तु किसी ने भी उसकी आलोचना नहीं की। न उस पर कोई आपत्ति उठाई।"

—महर्षि दयानन्द सरस्वती का जीवन-चरित्र पृ० २६५

महर्षि दयानन्द का जीवन-चरित्र पृष्ठ २६५ पर ही नीचे यह टिप्पणी प्रकाशित हुई है—"इस नमूने को स्वामी जी ने मिस्टर ग्राउस कलक्टर बुलन्दशहर व ग्रिफिथ साहेब के पास भी भेजा था और उन्होंने उस पर विरुद्ध सम्मति दी थी।"

हमारा अनुमान है कि यह टिप्पणी महर्षि के जीवन-चरित्र के सम्पादक स्वर्गीय श्री पण्डित घासी राम जी एम० ए० ने लिखी होगी।

अनुमान है कि ऋग्वेद-भाष्य का यह प्रथम नमूना सवंत् १९३२ वि० में छपा था। इस समय यह सर्वथा अप्राप्त है। यदि यह कहीं से प्राप्त हो सके, तो हम एक दुर्लभ इतिहासिक वस्तु के रूप में उस की सुरक्षा की व्यवस्था करेंगे। यदि कोई सज्जन इस विषय में कुछ विशेष जानकारी दे सकें, तो अवश्य ही दें, बड़ी कृपा होगी। बम्बई, महाराष्ट्र और गुजरात प्रान्त के आर्य भाई खोज करेंगे, तो शायद यह कहीं मिल ही जायेगा।

महर्षि ने वेद-भाष्य के नमूने का दूसरा अंक पुनः सम्वत् १९३३ वि० में काशी के लाजरस प्रेस में छपवाकर प्रसिद्ध किया था। इसमें ऋग्वेद के प्रथम मण्डल के प्रथम सूक्त का और द्वितीय सूक्त के प्रथम मन्त्र का संस्कृत भाष्य था। वैदिक यन्त्रालय अजमेर द्वारा प्रकाशित "ऋग्वेद-भाष्य के प्रथम नौ मन्त्रों का भाष्य" नामक जो पुस्तक इन दिनों उपलब्ध होती है, वह महर्षि द्वारा प्रकाशित वेद-भाष्य के इस दूसरे नमूने के आधार पर ही तैयार हुई है। इस में संस्कृत भाष्य तो महर्षि का ही रचा हुआ है, परन्तु हिन्दी अनुवादक का नाम उस पुस्तक में नहीं है। यह हिन्दी अनुवाद कितना प्राचीन है, इस प्रश्न का उत्तर देना भी हमारे लिये कठिन है। यहां यह भी उल्लेखनीय है कि यह अनुवाद संक्षिप्त भावानुवाद मात्र ही है।

वेद-भाष्य के इस दूसरे नमूने पर कलकत्ता संस्कृत कालिज के स्थानापन्न आचार्य श्री पण्डित महेशचन्द्र न्यायरत्न ने कुछ आक्षेप लिखकर प्रकाशित करवाये थे। महर्षि ने श्री न्यायरत्न महोदय के आक्षेपों के उत्तर में उसी समय अपना सुप्रसिद्ध भ्रान्ति-निवारण' नामक उत्तम ग्रन्थ रचकर प्रकाशित करवाया था। इस विषय का विशेष उल्लेख हमने "भ्रान्ति निवारण" की अपनी भूमिका में किया है।

महर्षि के वेद-भाष्य की संपूर्ण विशेषताओं को उनके इन केवल नौ मन्त्रों के भाष्य से ही जान लेना तो सम्भव नहीं है, न ही पाठक ऐसी आशा करेंगे; तथापि हम कहना चाहते हैं, यह अपूर्व है। यही वह नमूना है जोकि वेद-भाष्य के एक नवीन और उज्वल युग का आरम्भिक यत्न है। यही वह नमूना है, जिसके द्वारा महर्षि ने भारतीय जनता को अपनी ओर आकर्षित करके, बड़े उत्साह से वेद-भाष्य का अनुष्ठान किया था। और यही वह नमूना है, जो कि महर्षि के विरोधी-आलोचकों तथा उनके प्रतिपक्षियों के लिये एक गम्भीर चुनौती के रूप में प्रगट हुआ था, और आज भी एक चुनौती के रूप में विद्यमान है। भावी वेद भाष्य कारों के लिये यह नमूना चिरकाल तक पथ प्रदर्शी बना रहेगा।

वैदिक यन्त्रालय अजमेर द्वारा संवत् २००० वि० में प्रकाशित "ऋग्वेद-भाष्य के प्रथम नौ मन्त्रों का भाष्य" नामक पुस्तक आधुनिक ढंग पर मुद्रित करवाने के लिये हमने दुबारा लिखी है और वही अब आगे प्रकाशित हो रही है। इसमें सम्पूर्ण लेख अजमेर की पुस्तक के अनुसार ही है। भेद यह है कि प्रमाणभाग मोटे अक्षरों में और नई पंक्तियों में छपे हैं तथा लम्बे परिच्छेदों को छोटे परिच्छेदों का रूप दे दिया गया है।

हमें खेद है कि देहली में उत्तम प्रबन्ध न होने के कारण, हम मन्त्रों पर स्वरों का अङ्कन नहीं करवा सके यद्यपि जनसाधारण के लिये तो स्वरों का मुद्रण बे-अर्थ ही रहता है, तथापि हम मन्त्रों को स्वरांकित अवश्य कराना चाहते थे।

—सम्पादक

* ओ३म् *

ऋग्वेद का प्रथम सूक्त

अष्टक १ । अध्याय १ वर्ग १ ॥

—*—

अस्याग्नेयसूक्तस्य—मधुच्छन्दा ऋषिः । अग्निर्देवता । गायत्रीच्छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

मूलः—

ओ३म् । अग्निमीले पुरोहितं
यज्ञस्य देवमृत्विजम् ।
होतारं रत्नधातमम् ॥१॥

पदपाठः—अग्निम् । ईले । पुरःऽहितम् । यज्ञस्य । देवम् । ऋत्विजम् । होतारम् । रत्नधातमम् ॥ १ ॥

॥ अथ वेदभाष्यम् ॥

अथात्र प्रथमत ईश्वर एवार्थोऽग्निशब्देन गृह्यते । अत्र प्रमाणानि ।

इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहु-
रथो दिव्यः स सुपर्णो गरुत्मान् ।
एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्त्य-
ग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः ॥

ऋग्वेद अष्टक २ । अध्याय ३ । वर्ग २२ । मन्त्र ४६ ॥

अस्यायमर्थः । एकस्य सतः परब्रह्मण इन्द्रादीनि बहुधा नामानि सन्तीति वेदितव्यम् ॥

तदेवाग्निस्तदादित्यस्तद्वायुस्तदु चन्द्रमाः ।
तदेव शुक्रं तद् ब्रह्म ता आपस्स प्रजापतिः ॥

यजुर्वेद अध्याय ३२ । मन्त्र १ ॥

यत्सच्चिदानन्दादिलक्षणं ब्रह्म तदेवाग्न्यादिनामवाच्यमत्र बोध्यम् ॥

अग्निर्होता कविक्रतुः सत्यश्चित्रश्रवस्तमः ।
देवो देवेभिरागमत् ॥

ऋ० अ० १ । अ० १ । व० १ । मंत्र ५ ॥

कविः सर्वज्ञः, सत्यः सर्वदा विनाश रहितः, अत्यन्ताश्चर्यश्रवणश्चेत्यादि विशेषणयुक्तो मुख्यतया परमेश्वरो भवितुमर्हति नान्यः ।

ब्रह्म ह्यग्निः ॥

शतपथ काण्ड १ । अध्याय ५ ।

आत्मा वा अग्निः ॥

शतपथ कां० ७ । अध्याय २ ।

अयं वा अग्निः प्रजाश्च प्रजापतिश्च ॥

श० काण्ड ६ । अ० १ ।

संवत्सरो वा अग्निर्वैश्वानरः ॥

श० काण्ड ६ । अ० ६ ।

अग्निर्वै देवानां व्रतपतिः ॥

श० कां० १ । अ० १ ।

अग्निर्ह्यात्मनोऽत्र वाचकोस्ति । प्रजाशब्देन भौतिकोग्निः प्रजापतिशब्देनाऽत्रेश्वरो ग्राह्यः, देवानां विदुषां व्रतं—

एतद्ध वै देवा व्रतं चरन्ति यत्सत्यम् ॥

श० कां० १ । अ० १ ॥

सत्याचार नियमपालनं व्रतं तत्पतिरीश्वरः ॥

एष वै देवा ननु विद्वान्यदग्निः ॥

श० कां० १ । अ० ५ ।

तेषूभयेषु मर्त्येष्वग्निरेवामृत आस ॥

श० कां० २। अ० । २।

विद्या संभवः ईश्वरे ऽस्ति नैव च भौतिके तथामृतत्वं परमेश्वर एव घटते नान्यत्रेति ॥

प्राणोग्निः परमात्मेति ॥

मैत्र्युपनिषदि प्रपाठक ६। खण्ड ६ ॥

एष हि खल्वात्मेशानः शंभुभवो रुद्रः। प्रजापतिर्विश्वसृक् हिरण्यगर्भः सत्यं प्राणो हंसः शास्ता विष्णुर्नारायणोऽर्कः सविता धाता विधाता सम्राडिन्द्र इन्दुरिति य एष तपत्यग्निरिवाग्निनापिहितः सहस्राक्षेण हिरण्मयेनाण्डेन एष वा जिज्ञासितव्योऽन्वेष्टव्यः सर्वभूतेभ्योऽभयं दत्त्वेत्यादि ॥

मैत्र्युपनिषदि प्र० ६। खं० ८ ॥

प्राणाग्न्यात्मेशानादीनीश्वरस्यनामान्यत्र सन्तीति बोध्यम् ॥

अग्निर्वै सर्वा देवता इत्याद्यैतरेब्राह्मणे पंचका॥

१ ॥ अध्याये १ ॥

यत्रोपास्यत्वेन सर्वा देवतेत्युच्यते तत्र ब्रह्मात्मैव ग्राह्यः। आत्मैव देवताः सर्वाः। सर्वमात्मन्यवस्थितमिति मनुनोक्तं १२ अध्याये।

अग्निः कस्मादग्रणी भवत्यग्रं यज्ञेषु प्रणीयतेऽग्रं नयति सन्नममानो क्नोपनो भवतीति स्थौलाष्ठीविर्न क्नोपयति न स्नेहयति त्रिभ्य आख्यातेभ्यो जायत इति शाकपूणिरितादक्तादग्धाद्वा नीतात्स खल्वेतेरकरमादत्ते गकारमनक्तेर्वा दहतेर्वा नीः परस्तस्यैषा भवतीति।

निरुक्त अध्याय ७। खण्ड १४ ॥

अग्रणीः सर्वोत्तमः सर्वेषु यज्ञेषु पूर्वमीश्वरस्यैव प्रतिपादनादीश्वरस्यात्र ग्रहणम्। दग्धादिति विशेषणाद्भौतिकस्यापि च।

अग्निः सर्वा देवता इति निर्वचनाय, इन्द्रं मित्रं वरु०, एकं सद्विप्रा व०, इममेवाग्निं महान्तमात्मानमेकमात्मानं बहुधा मेधाविनो वदंतीन्द्रं मित्र वरुणमग्निं दिव्यंच गरुत्मन्तं, दिव्यो दिविजो गरुत्मान् गरणावान् गुर्वात्मा महात्मेति वास्तु सूक्तं भजते यस्मै हविर्निरूप्यते यमेव सोग्निनिपातमेवैते उत्तरे ज्योतिषी एतेन नामधेयेन भजेते ॥

नि० अ० ७। खण्ड १८

अनेनोभयोर्ज्ञानप्रकाशवतोर्ज्योतिषोरीश्वरभौतिकाग्नियोर्ग्रहणमित्युभयार्थग्रहणमेव प्रमाणम् ॥

अग्निः पवित्रमुच्यते अग्निः पवित्रं स मा पुनातु वायुः सोमः सूर्य इन्द्रः पवित्रं ते मा पुनन्त्वित्यपि निगमो भवति ॥

नि० अ० ५। खं० ६।

प्रशासितारं सर्वेषामणीयांसमणोरपि ॥
रुक्माभं स्वप्नधिगम्यं विद्यात्तं पुरुषंपरम् ॥१॥
एतमेके वदन्त्यग्निं मनुमन्ये प्रजापतिम्।
इन्द्रमेके परे प्राणमपरे ब्रह्म शाश्वतम् ॥२॥

इति मनुस्मृतिः अ० १२। श्लोक १२२, १२३॥

पवित्रः पवित्रकर्ता परमात्मास्तीत्यतः पवित्र शब्देन परमेश्वरस्यैव ग्रहणम् ॥ तथापरः पुरुषोऽन्यादीनि च परमेश्वरस्यैवत्र नामानि सन्तीति बोध्यम् ॥ इत्यादिभिः प्रमाणैरग्निशब्देन परमात्मनोत्र ग्रहणमिति सिद्धम् ॥

(अग्निमीले) सर्वज्ञस्सर्वशक्तिमान् न्यायकारीत्यादिविशेषणयुक्तः परमेश्वरोग्निः पितृवत् पुत्रान् प्रत्युपदिशति स्म। हे जीव मनुष्य देहधारिन्! अहं अग्निं परमात्मानं ईले स्तौमीति वदेति पूर्वान्वयः। ततो जीवोभिवदति सर्वज्ञं शुद्धं सनातनमजमनाद्यनन्तं सर्वव्यापकं जगदादिकारणं स्वप्रकाशं परमेश्वरमग्निमहमीले स्तौमि। तस्मादन्यमीश्वरत्वेन लेशमात्रमपि नाश्रये, कस्मै प्रयोजनाय धर्मार्थकाममोक्षसिद्धय इति निश्चयः।

अञ्चु गतिपूजनयोः। णीञ् प्रापणे। अग्नि गत्यर्थः इण गतौ, इत्यादि धातुभ्योग्निशब्दः सिद्ध-

यति ! अंक्ते । अंक्त्यते । जानाति ! ज्ञायते । गच्छति । गम्यते प्राप्नोति । प्राप्यते ! सत्करोति । सत्क्रियते । पूजयति । पूज्यते । नयति । नीयते । प्राप्यते । धर्मात्माजनो विद्वान् तथा विद्वद्भिर्धर्मात्मभिर्मुक्तभिश्चेत्यादि व्याकरणनिरुक्तप्रमाणैरग्न्यग्निशब्देन परमेश्वर ग्रहणे सुष्ठुत्तिर्गम्यते॥

कथंभूतः सोग्निः (पुरोहितः) सर्वस्य जगतः स्वभक्तानां च धर्मात्मनां भक्तेरारंभात् पूर्वमेव सकलपदार्थोत्पादनेन विज्ञानादिदानेन चैनं जीवं दधाति स पुरोहितः परमात्माग्निः।

डुधाञ् धारणपोषणयोः। अस्मात्पुरः पूर्वात् क्तप्रत्ययान्तात्पुरोहितशब्दः सिध्यति, अतएव सर्वधारकस्सर्वपोषकश्चेश्वर एव नान्यः॥ अत्राह निरुक्तकारः।

पुरोहितः पुर एनं दधाति होत्राय वृतः कृपायमाणोन्वध्यायद्देवश्रुतं देवा एनं शृण्वन्ति वृष्टिवनिं वृष्टिवाचिनं रराणो रातिरभ्यस्तो बृहस्पतिर्ब्रह्मासीत् सोस्मै वाचमयच्छद् बृहदुक्थ्याख्यातमिति॥

नि० अ० २ खं० १२॥

(यज्ञस्य देवम्) यज देवपूजासंगतिकरणदानेषु। अस्माद्धातोर्नङ्प्रत्ययांतो यज्ञशब्दः साध्यते। अग्निहोत्राद्यश्वमेधान्तस्य क्रियासमूहजन्यस्य सर्वजगदुपकारकस्य यज्ञस्य।

यद्वा परमेश्वरस्य सामर्थ्यात्सत्त्वरजस्तमसां साम्यावस्था प्रकृतिरुत्पन्नासीत्तत् प्रकृत्यादिपृथिव्यंतकार्यकारणसंगत्योत्पन्नस्यास्य जगतो यज्ञस्य।

अथवा सत्संगतिकरणोत्पन्नस्य विद्यादिविज्ञानयोगादेर्यज्ञस्य।

यज्ञः कस्मात्प्रख्यातं यजति कर्मेतिनैरुक्ता याञ्चो भवतीति वा बहुकृष्णाजिन इत्यौपमन्यवो यजूंष्येनं नयन्तीति वा॥

निरुक्त अ० ३ खं० १६॥

देवं दातारं सुखानां द्योतकं सर्वस्य जगतः प्रकाशकं सर्वैर्विद्वद्भिः कमनीयम्। स्वभक्तानां मोदकं हर्षकरम। शत्रूणां मनुष्याणां कामक्रोधादीनां वा विजिगीषकम्। विजेतुमिच्छन्तं देवम्।

दिवुक्रीडाविजिगीषाव्यवहारद्युतिस्तुतिमोदमदस्वप्नकांतिगतिषु। अस्माद्धातोरचिप्रत्ययेकृते देवशब्दः सिध्यति॥

(ऋत्विजम्) कृल्युटो बहुलमिति वार्त्तिकम्। कृत्यल्युटो बहुलमित्यस्य भाष्येस्त्यतः कर्मण्यति क्विन्। सर्वेषु ऋतुषु यजनीयं पूजार्हं यथाकालं जगद्रचकं ज्ञानादियज्ञसाधकमृत्विजम्। ऋतूपपदात् क्विन्प्रत्ययान्ताद्यजधातोरयं प्रयोगः॥

(होतारम्) सर्वं जगते सर्वपदार्थानां दातारम्। मोक्ष समये प्राप्त मोक्षाणां जनानामादातारं ग्रहीतारम्। वर्त्तमान प्रलयोः समये सर्वस्य जगत आदातारं ग्रहीतारमाधारभूतं होतारम्॥

हु दानादनयोः। आदाने चेत्येके। अस्माद्धातोरयं शब्दः सिद्धो जायते। अदनं भक्षणं न किन्तु चराचरस्य जगतो ग्रहणं तत्कर्त्ता परमेश्वरोऽत्तेत्युच्यते॥

अत्रप्रमाणम्।

अत्ता चराचरग्रहणात्।

इतिवेदान्तशास्त्रस्य सूत्रम्।
अ० १। पा० २ सू० ९॥

(रत्नधातमम्) रत्नानि सर्वजनैरमणीयानि प्रकृत्यादिपृथिव्यन्तानि ज्ञानहीरकसुवर्णादीनिच जीवेभ्य दानार्थं दधातीति रत्नधाः, अतिशयेन रत्नधाः स रत्नधातमस्तं रत्नधातमम्।

रत्नोपपदात् क्विबन्ताड्डुधाञ धातोस्तमबंतः प्रयोगः॥

इमं मन्त्रं यास्को निरुक्तकार एवं समाचष्टे।

अग्निर्मलेग्निं याचामीलिरध्येषणाकर्मा पूजाकर्मा वा, पुरोहितो व्याख्यातो यज्ञश्च देवो दानाद्वा दीपनाद्वा द्योतनाद्वा द्युस्थानो भवतीति वा यो देवः सा देवता, होतारं ह्वातारं जुहोतेर्होतेत्यौर्णवाभो रत्नधातमं रमणीयानां दातृतमम् तस्यैषापरा भवतीति॥

नि० अ० ७। खं० १५॥

अथास्य मन्त्रस्यान्वयो लिख्यते॥

पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजं होतारं रत्नधातमं

परमात्मानमग्निमहमीळे स्तौमि यावानि तस्यैवाध्यन्वेषणं कुर्व इत्यन्वयः ॥

॥अथ संस्कृतभाष्यस्य प्राकृतभाषायार्थो लिख्यते॥

(अग्निमीळे) इस मन्त्र का ईश्वराभिप्राय से जो अर्थ है, सो प्रथम किया जाता है। इस मन्त्र में अग्नि शब्द से परमेश्वर का ग्रहण होता है। इसके ग्रहण में "इद्रं मित्रं वरुणं" यथा लिखित प्रमाण का आधार है।

सब जगत् को उत्पन्न करके संसारस्थ पदार्थों का और परमात्मा का जिस से पदार्थ ज्ञान होता है, उस सनातन अपनी विद्या का, सब जीवों के लिये, आदि सृष्टि में परमात्मा ने उपदेश किया है, जैसे अपने सन्तानों को पिता उपदेश करता है, वैसे ही परम कृपालु पिता जो परमेश्वर है, उसने हम सब जीवों के हित के लिये सुगमता से वेदों का उपदेश किया है। जिससे धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष और सब पदार्थों का विज्ञान और उनसे यथावत् उपकार लेवें। इस लिये अत्यन्त हित से हम लोगों को उपदेश किया है। हम लोग भी अत्यन्त प्रेम से इसको स्वीकार करें।

अब जैसा उपदेश परमात्मा को करना है, सो सब जीवों की ओर से परमेश्वर करता है, कि जीव लोग जब इस वेद को पढ़ें, पढ़ावें, पाठ करें और विचारेंगे तब यथावत् कर्त्ता, क्रिया और कर्म का सम्बन्ध हो जायेगा।

जो सबका जानने वाला, शुद्ध, सब विकारों से रहित, सनातन, जो सब काल में एक रस बना रहता है, जो अज है, जिसका कभी जन्म नहीं होता, जो अनादि है, जिसका आदिकारण कोई नहीं, जो अनन्त है, जिसका अन्त कोई नहीं ले सकता, जगत् में जो परिपूर्ण हो रहा है, सब जगत् का आदि कारण और जो प्रकाशस्वरूप है, ऐसा जो परमेश्वर, जिसका नाम अग्नि है, उस की मैं स्तुति करता हूँ। उससे भिन्न कोई दूसरा ईश्वर नहीं है और उसको छोड़ के दूसरे को लेशमात्र भी आश्रय मैं कभी नहीं करता। किस प्रयोजन के लिये ? धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—इनकी सिद्धि के लिये।

अंचुगतिपूजनयोः इत्यादि धातुओं से अग्नि शब्द सिद्ध होता है। अंचतीत्यादि० जो सबको जानता है, जो सब वेदादिशास्त्रों से जाना जाता है, जो सबमें गत नाम प्राप्त हो रहा है, जो सर्वत्र प्राप्त होता है, जो सब धर्मात्माओं का सत्कार करता है, जिसका सत्कार सब विद्वान् लोग करते हैं, जो सब सुख को प्राप्त करता है, और जो सब सुखों के अर्थ प्राप्त किया जाता है, इस प्रकार व्याकरण निरुक्त आदि के प्रमाणों से, अग्नि शब्द से परमेश्वर के ग्रहण में कोई भी विवाद नहीं है।

पूर्वोक्त अग्नि कैसा है कि (पुरोहितः) सब देहधारियों की उत्पत्ति से प्रथम ही सब जगत् और स्वभक्त धर्मात्माओं के लिये सब पदार्थों की उत्पत्ति जिसने की है। और विज्ञानादि दान से जो जीवादि सब संसार का धारण और पोषण करता है। इस से परमात्मा का नाम पुरोहित है।

पुरः पूर्वक क्त प्रत्ययान्त डुधाञ् धातु से पुरोहित शब्द शिद्ध हुआ है। इसी से सब का धारण और पोषण करने वाला एक परमात्मा ही है। अन्य कोई भी नहीं। इस पुरोहित शब्द में पुर एनं० इत्यादि निरुक्त का भी प्रमाण है॥

(यज्ञस्य देवम्) यज धातु से यज्ञ शब्द सिद्ध होता है। इसका यह अर्थ है कि अग्निहोत्र से लेके अश्वमेध पर्यन्त विविध क्रियाओं से, जो सिद्ध होता है, जो वायु और वृष्टि जल की शुद्धि द्वारा सब जगत् को सुख देने वाला है, उसका नाम यज्ञ है। अथवा परमेश्वर के सामर्थ से सत्त्वगुण, रजोगुण और तमोगुण इन तीनों गुणों की जो एक अवस्था रूप कार्य उत्पन्न हुआ है, जिसका प्रकृति, अव्यक्त, और अव्याकृतादि नामों से वेदादि शास्त्रों में कथन किया है, उस से ले के पृथिवी पर्यन्त कार्य कारण संगति से उत्पन्न होता है, जो जगत् रूप यज्ञ है, अथवा सत्यशास्त्र सत्यधर्माचरण, सत्पुरुषों के संग से जो उत्पन्न होता है, जिसका नाम विद्या, ज्ञान और योग है। उसका भी नाम यज्ञ है।

इन तीनों प्रकार के यज्ञों का जो देव है, जो सब सुखों का देने वाला, जो सब जगत् का प्रकाश करने वाला, जो सब भक्तों को आनन्द कराने वाला, जो अधर्म अन्यायकारी शत्रुओं का और काम क्रोधादि

शत्रुओं का विजिगीषक नाम जीतने की इच्छा पूर्ण करने वाला है, इस से ईश्वर का नाम देव है॥

(ऋत्विजम्) जो सब ऋतुओं में पूजने योग्य है, जो सब जगत् का रचने वाला और आनादि यज्ञ को सिद्धि का करने वाला है, इस से ईश्वर का नाम ऋत्विज् है। ऋतु शब्द पूर्वक क्विन् प्रत्ययान्त यज धातु से ऋत्विज् शब्द सिद्ध होता है॥

(होतारम्) जो सब जगत् के जीवों को सब पदार्थों का देने वाला है, जो मोक्ष समय में मोक्ष को प्राप्त हुए जीवों का ग्रहण करने वाला है, तथा जो वर्त्तमान और प्रलय में सब जगत् का ग्रहण और धारण करने वाला है, इससे परमात्मा का होता नाम है। हु दानादानयोः। आदाने चेत्येके। इस धातु से तृच् प्रत्यय करने से होता शब्द सिद्ध हुआ है॥

(रत्नधातमम्) जिन में रमण करना योग्य है, जो प्रकृत्यादि पृथिव्यपर्यन्त रत्न यथा विज्ञान हीरादि जो रत्न और सुवर्णादि जो रत्न हैं, जिन के यथावत् उपयोग करने से आनन्द होता है, उन रत्नों का सब जीवों को दान के लिये जो धारण करता है, वह रत्नधा कहाता है, और अतिशय से पूर्वोक्त रत्नों का धारण करने वाला है, इस से परमेश्वर का नाम रत्नधातमम् है।

रत्न शब्द पूर्वक क्विप् प्रत्यान्त डुधाञ् धातु से तमप् प्रत्यय करने से यह शब्द सिद्ध हुआ है। इस मन्त्र की निरुक्तकार यास्कमुनि ने जिस प्रकार की व्याख्या की है, सो संस्कृत में लिखा है, उस को वहीं देख लेना।

—*—

अथ द्वितीयोर्थः

(अग्निमीले) अत्राग्निशब्देन भौतिकोग्निर्गृह्यते। रूपगुणं दाहकमूर्ध्वगामिनं भास्वरमग्निमहमीडे। तस्य गुणानामन्वेषणं कुर्वे। कीदृशगुणोग्निरस्तीत्याह। कलाकौशलयानचालनादिपदार्थविद्याया अग्निरेव मुख्यं कारणमस्ति। विनाग्निनेदृगुत्तमक्रिया नैव सिध्यति। अतएव सर्वविद्वद्भिः शिल्पिभिरग्नेः स्वभावगुणा यथावदन्वेषणीयाः॥ पुरा ह्यार्यैर्याश्ववद्विद्या शीघ्रगमनहेतुः सम्यक् सम्पादितेति श्रूयते साग्निविद्यावासात्। अत्र प्रमाणानि।

ततो देवा एतं वज्रं ददृशुः। यदश्वं तं पुरस्ताद्दुदश्रयँस्तस्माद्यमेनाट्रे निरातेग्निरजायत तस्माद्यमाग्निं मन्यिष्यन्त्स्यात्तस्मादश्वमानेत्यै ब्रूयात्स पूर्वेणोपतिष्ठते वज्रमेवैतदुच्छ्रयति तस्यामेनाट्रे निरातेऽग्निरजायत इति॥

श० कां० २। अ० १॥

वृषो अग्निरिति॥ श० कां० १। अ० ४॥

अग्निर्वा अश्वः॥ श० कां० ३। अ० ६॥

अश्वो ह वा एष भूत्वा देवेभ्यो यज्ञं वहति॥

श० कां० १। अ० ४॥

तूर्णिर्हव्यवाडिति॥ श० कां० १। अ० ४॥

अग्निर्वै योनिर्यज्ञस्येति॥ श० कां० १। अ० ६॥

इत्याद्यनेक प्रमाणैरश्वनाम्ना भौतिकोग्निरेवात्र गृह्यते। आशुगमनहेतुत्वादश्वोग्निर्विज्ञेयः। अयमेवाग्निर्वज्रः सर्वपदार्थच्छेदकत्वत्स्वायमच्छेद्यत्वाच्चाश्वविमानादियानानां शीघ्रं गमयितेति विज्ञायते। वृषवद्यानानां वोढाग्निरिति च। तथाश्ववद्दृढि।

एषोग्निरश्वो भूत्वा देवेभ्यो दिव्यगुणेभ्यः शिल्पविद्याविद्भ्यो मनुष्येभ्यः शिल्पविद्यासंगतं विमानादियानाख्यं यज्ञमेषोग्निरेव वहति प्रापयतीति शेषः। अतएव तूर्णिः शीघ्रगमनहेतुः। हव्यवाड् दातुं ग्रहीतुं योग्यं शिल्पविद्यामयं यज्ञं वहति प्रापयतीत्यर्थः। इत्थं शिल्पविद्यासमूहभूतस्य यज्ञस्यग्निरेव योनिः कारणं बीजं निदानमिति शेषः॥

(पुरोहितम्) अतएव सोग्निः पुरोहितः पुरस्तात् विमानकलाकौशलक्रियाप्रचालनादिगुणमेनं शिल्पविद्यामयं दधातीतिपुरोहितः॥

(यज्ञस्य देवम्) विविधक्रियाजातस्य शिल्पविद्यादिक्रियाजन्यबोधसंगतस्य, देवः व्यावहारिकविद्याप्रकाशकस्तम् ॥

(ऋत्विजम्) सर्वशिल्पादिव्यवहारविद्योतनमर्हम् ॥

(होतारम्) तद्विद्यादिगुणानां दातारमदातारं च ॥ अतएव—

(रत्नधातमम्) तद्विद्यानिष्ठानां शिल्पिनां रत्नैरतिशयेन पोषकम्। तद्विद्याऽऽ धारक वा।

अस्यान्वयस्तु पूर्ववद्वेदितव्यः ॥

चन्द्रमा मनसो जातश्चक्षोः सूर्यो अजायत।
श्रोत्राद्वायुश्च प्राणश्च मुखादग्निरजायत॥

शुक्ल य० अ० ३१। म० १२ ॥

तथा—

तस्माद्वा एतस्मादात्मन आकाशः सम्भूतः। आकाशाद्वायुः। वायोरग्निरिति०

तैत्तिरीयोपनिषदि अनुवाक १ ॥

इत्यादिभिः प्रमाणैर्योऽग्निरत्र ग्राह्यः। कुतः। उत्पत्तिस्थिति प्रलयवतां पदार्थानां संसारान्तर्गतभावात्। परमेश्वरस्त्वेतेभ्यो विलक्षण एवातः। भौतिकाग्न्यादीनि जन्मादिधर्मवन्ति सन्ति कार्यत्वात्। परमेश्वरस्य जन्मादयो धर्मा न विद्यन्ते सर्वस्यादिकारणत्वात्। इति द्वितीयोऽर्थः ॥

पूर्वेषां भाष्यकृतां सायणाचार्यादीनां ये गुणाः सन्ति ते वयमाभिरपि स्वीक्रियन्ते। गुणानां सर्वैः शिष्टैः स्वीकार्यत्वात्। तेषां ये दोषाः सन्ति तेऽत्र दिग्दर्शनेन खण्ड्यन्ते।

रावणोवटसायणमाधवमहीधराणां दोषयुक्तभाष्यखण्डनविषये यत्र यत्र समानं भाष्यं तत्र तत्रैकस्य खण्डनेनेतरेषामपि भाष्यस्य खण्डनं वेद्यम्। यत्र यत्र च विशेषस्तत्र तत्र पृथक् पृथक् खण्डनं विधास्यामि। तेनैवार्यङ्गलखण्डभाषादिनिर्मितस्य व्याख्यानस्यापि खण्डनं बोध्यम्।

सायणाचार्यादिभिरग्नि शब्देनात्र भौतिकोऽग्निर्गृहीतः। तद्यथा। तथाग्निरपि यज्ञस्यापेक्षितं होमं संपादयति। यद्वा यज्ञस्य संबन्धिनि पूर्वभाग आहवनीयरूपेणावस्थितम्। यद्यपीन्द्रादयस्तत्र हूयन्ते तथापि परमेश्वरस्यैवेन्द्रादिरूपेणावस्थानादविरोधः। इयुक्तत्वात्। इदमसमंजसं मुख्येश्वरार्थस्य त्यागात्। इन्द्रादिरूपधारणमपीश्वरो नैव करोति। स पयगच्छुक्रमकायम्। अज एकपात्। इति मन्त्रार्थविरोधात्। इदं मित्रामित्याद प्रमाणैः सिद्धस्य परमेश्वरार्थस्य त्यागः शिष्टसम्मतो नास्ति। भौतिकाग्न्यर्थस्य विषयस्याप्यल्पत्वात्तत्वात्। तस्मादयमर्थोऽपि निर्दोषो नास्ति।

इन्द्रादीनि परमेश्वरस्य सूर्यादीनां च नामानि सन्ति। तान्यैतरेय शतपथादिब्राह्मणनिरुक्तव्याकरणादिषु व्याख्यातानि तथा वेदेष्वपि तेषां मध्यादस्मिन् मन्त्रभाष्येऽपि कानिचिदिन्द्रादीनि नामानि प्रकाशितानि। अग्रे यत्र यत्र यस्य यस्य मन्त्रार्थस्य विषय आगमिष्यति तत्र तत्र खण्डनं मयोदाहरिष्यते। सायणाचार्येण तथा प्रतिपादनं नैव कृतमतस्तद्भाष्यं दोषवदस्तीति बोध्यम्।

एतत्खण्डनाभ्यंतरे ह्यक्तरविलसनाख्यवेदार्थयत्नादीनामपि खण्डनमागतमिति विज्ञेयम्।

कश्चिद् ब्रूयात्। सायणाचार्यादिभिर्निरुक्तादिप्रमाण्ययुक्तं भाष्यं विहितम्। कथं दोषवदिति। अत्रोच्यते। निरुक्तादिवचनानि तु लिखितानि। परन्तु तानि तद्वचनाद्विरुध्यन्त एव। तद्यथा। अग्निः कस्मादग्रणीर्भवतीत्यादि। अग्रणीः। सर्वोत्तमः। अग्रं सर्वोत्तमं नयतीत्यनेन परमेश्वरस्यैव ग्रहणं भवितुमर्हति नान्यस्य। कुतः। गौणमुख्ययोर्मुख्ये कार्यसंप्रत्ययः॥ इति व्याकरणन्यायेन परमेश्वरादग्रणीर्मुख्यः कश्चिदपि नास्तीतो विरोध एव तद्भाष्येऽस्ति। अन्येऽपि बहवो दोषास्तत्र सन्ति ग्रंथभूयस्त्वभयान्नोल्लिख्यन्ते। एतादृशानि पूर्वजकृतानि भाष्यान्यासन्। यानि भवन्ति भविष्यन्ति च तेषां खण्डनं तावतैव बोध्यम्। अग्रे ऽग्रे यद्यदत्यन्तविरुद्धं भाष्यमस्ति तत्तदेवखण्डयिष्यामि नान्यदिति च ॥ १ ॥

भावार्थ

(अग्निमीळे) अब दूसरा अर्थ व्यवहारविद्या के अभिप्राय से प्रमाण के सहित किया जाता है। इस में अग्नि शब्द से भौतिक अग्नि जो यज्ञ जलाने और

ऊपर चलने वाला है। तथा सब पदार्थों का अलग-करने और बल देने वाला तथा जिसका रूप गुण है, और मूर्तिमान् द्रव्यों का जो प्रकाशक है, ज्वालारूप उसका ग्रहण किया जाता है। मैं उस अग्नि की स्तुति करता हूं। उसके गुणों का अन्वेषण अर्थात् खोज करता हूं। अग्नि में कौन-कौन गुण हैं और किस-किस विद्या की सिद्धि होती है? जो-जो कला-कौशल, सवारीचालनादि पदार्थ विद्याओं की सिद्धि करने के उत्तम गुण हैं, सो-सो अग्नि से ही प्राप्त होते हैं। इससे अग्नि ही शिल्प विद्या का मुख्य कारण है।

क्योंकि बिना अग्नि से कोई भी उत्तम गुणवाली पदार्थविद्या सिद्ध नहीं हो सकती, इसी से जो विद्वान् लोग पदार्थविद्या में हो गये होते हैं। और होंगे, उन सबों ने पदार्थविद्या में अग्नि को ही मुख्य साधन माना है, मानते हैं, और मानगे। इस समय में भी जो पदार्थविद्याओं को किया चाहे, सो भी अग्नि के गुणों का खोज करे।

पहले आर्यों ने अश्वविद्या नामसे जो विमानादि शिल्पविद्या सिद्ध की थी, वह अश्वविद्या ही थी। अश्व-विद्या जो अग्न्यादि पदार्थोंसे रसायनविद्या होती है, सो शिल्पविद्या ही है। इसमें अनेक प्रमाण हैं। 'तता देवा एतं वज्रं ददृशुः यदश्वनित्यादि' शतपथादि ग्रंथों का यथा लिखित प्रमाण देख लेना। उनमें अश्व जो अग्नि है, उसी का ग्रहण किया है। इस प्रकार के अनेकों प्रमाणों से अश्वादिक नामों से इस भौतिक अग्नि का ही ग्रहण किया जाता है। आशु नाम शीघ्र चलान का जो हेतु है, इस से अग्नि को ही अश्व जानना।

शिल्पविद्या रूप यज्ञ का अग्नि ही देव है। इसी अग्नि का वज्र नाम है। क्योंकि सब पदार्थों को अलग-अलग करने और प्रकाशनेवाला अग्नि ही है। और वह किसी से छेदन में नहीं आता। इससे अग्नि का नाम वज्र है।

वृषः। वृषवत् बैल की नाईं सवारियों को चलाने वाला अग्नि ही है। तथा घोड़े की नाईं भी सवारियों को दौड़ाने वाला अग्नि ही है। तथा तूर्णिः। अग्नि को ही अत्यन्त वेगवाला सवारियों के चलाने में जानना। तथा हव्यवाट्। शिल्प विद्यारूप यज्ञ की प्राप्ति कराने वाला भी अग्नि ही है॥

(पुरोहितम्) इसी से इस अग्नि को पुरोहितम् जानना। विमान, कला, कौशल, क्रिया चालन आदि गुणों का धारण करने वाला है। और सब विद्याओं का प्रथम हेतु होने से अग्नि का नाम पुरोहित है।

(यज्ञस्य देवम्) यज्ञ का देव अर्थात् विविध क्रियाओं से जो शिल्पविद्या बनती है, उस विद्या का जो प्रकाश करने वाला है, सो देव है।

(ऋत्विजम्) जो शिल्पादि सब व्यवहारों की सिद्धि करने वाला है।

(होतारम्) जो उस विद्या के दिव्यगुणों को देने और धारण करने वाला है।

(रत्नधातमम्) जो उस शिल्प विद्या के जानने वाले मनुष्य को रत्नों से अत्यन्त सुख देने वाला है, उसी को हम लोग शिल्प विद्या की सिद्धि के लिये ग्रहण करें।

चन्द्रमा मन से उत्पन्न हुआ है, इत्यादि शुक्ल यजुर्वेद तथा तैत्तिरीयोपनिषदादि प्रमाणों से व्यवहार विद्या में भौतिक अग्नि का ही ग्रहण करना चाहिये। क्योंकि जिन की उत्पत्ति वर्तमान होके पुनः प्रलय हो, उन सब पदार्थों को संसार ही में जानना चाहिये। इससे भौतिक अग्नि को ही इस अर्थ में जानना। परमेश्वर तो इन जन्मादि धर्मवाले पदार्थों से सदा अलग ही है और सब का आदि कारण है।

पूर्व जो सायणाचार्य आदि वेद भाष्य के करने वाले हैं और जो उनके भाष्य में दोष हैं, उनका खण्डन संक्षेप से दिखाया जाता है। जो रावण, उव्वट सायण और महीधर वेदों के व्याख्या करने वाले हैं। इन में से एक के खण्डन से इस प्रकार के अन्य का भी खण्डन सर्वत्र जान लेना। और जहां-जहां उन में बड़ा दोष है, उस-उस का अलग अलग खण्डन किया जायगा। वैसे ही आर्यभाषा, दक्षिणभाषा किंवा अन्य भाषा तथा अंग्रेजी भाषा में किये व्याख्यान का भी खण्डन जानना। उन का दोष संक्षेप से लिखते हैं।

इस मन्त्र के अर्थ में सायणाचार्य आदि ने भौतिक अग्नि का ही ग्रहण किया है, जिस में होम करते हैं।

इस अर्थ से भिन्न अर्थ का ग्रहण नहीं किया है। इस का खण्डन संस्कृत में लिखा है, वहां समझ लेना। अन्यथा भाष्य बनाने वाले जितने पहले हो गये हैं, इस समय जितने हैं, वा आगे जितने होंगे, इन सब का भाष्य खण्डन के योग्य अवश्य है। क्योंकि मनुष्यों की वृद्धि, विद्या, विचार, बल और पराक्रमादि अधिक न्यून होते ही रहते हैं। इस से विना विचार किये ग्रन्थ का प्रमाण सर्वदा नहीं रहता, इस में कुछ आश्चर्य नहीं ॥ १ ॥

॥ अथ द्वितीयामृचामाह ॥

मूलः—

अग्निः पूर्वेभिर्ऋषिभिरीड्यो नूतनैरुत। स देवाँ एह वक्षति ॥२॥

प०—अग्निः । पूर्वेभिः । ऋषिभिः । ईड्यः । नूतनैः । उत । सः । देवान् । आ । इह । वक्षति ॥ २ ॥

भाष्यम्

(अग्निः) अयमग्निः परमेश्वरः । (पूर्वेभिः) पूर्वैस्तथा । (नूतनैरुत) नवीनैरपि । (ऋषिभिरीड्यः) मन्त्रद्रष्टृभिर्ऋषिभिस्तकैः प्राणैश्च स्तुत्यो वन्द्योपेक्षणीयः पूज्यश्चास्ति । स जगदीश्वरः स्वकृपाकटाक्षेण देवान् दिव्यानीन्द्रियाणि विद्यादिदिव्यगुणान् दिव्यवस्तूनि दिव्यभोगांश्च । (इह वक्षति) इहास्मिन् संसारे जन्मन्यात्मनि च । आवक्षति । आवहतु । आसमंतात्प्रापयतु न इति शेषः ॥

अत्र प्रमाणानि ।

प्राणा वा ऋषयो दैव्यासः

ऐत० पं० २ । अ० ४ ॥

प्राणा वा ऋषयः । ऋतवो वै देवाः ॥

श० कां० ७ अ० २ ॥

अग्निः पूर्वेभिर्ऋषिभिरीड्यो नूतनैरुत । स देवां एह वक्षति ॥ १ ॥

अग्निर्यः पूर्वैर्ऋषिभिरीडितव्यो वन्दितव्योऽस्माभिश्च नवतरैः स देवानिहावहत्विति । स न मन्येतायमेवाऽग्निरित्यप्येते उत्तरे ज्योतिषी अग्नी उच्येते ।

नि० अ० ७ । खं० १६ ॥

पुरस्तान्मनुष्या वा ऋषिभूत्क्रामत्सु देवानत्रुवन्को न ऋषिर्भविष्यतीति तेभ्य एतं तर्कमृषिं प्रायच्छन्मन्त्रार्थचिन्तामभ्यूहमभ्यूढम् इति

नि० अ० १३ । खं० १२ ॥

अयमर्थः पूर्वैर्भिर्जगत्कारणस्थैर्नूतनैः कार्यशरीरस्थैर्ऋषिभिः प्राणैः सह मनुष्यैरीड्य इत्यर्थः । (अग्निर्यः) यो अग्निः परमेश्वरो भौतिको वास्तिसोऽत्र ग्राह्यः । कुतः । स न मन्येतायमेवाग्निरित्यप्येते उत्तरे ज्योतिषी अग्नी उच्यते इत्युक्तत्वात् । परमेश्वरो विद्वदादिदिव्यश्चैतावग्नी उत्तरे ज्योतिषी अत्र ग्रहीतुं योग्ये स्तः । एतमेव तर्कवेदशास्त्रादिस्थैः पूर्वैर्भिरस्मदादिभिरिदानीन्तनैर्नवतरैश्चैवेश्वरः स्तुत्या वन्दनेन वेद्योऽस्तिनान्यथा ।

अविज्ञाततत्त्वेऽर्थे कारणोपपत्तितस्तत्त्वज्ञानार्थमूहस्तर्क इति गोतमाचार्येण न्यायशास्त्रे प्रतिपादितत्वात् मनुष्याणां तर्कविना यथार्थज्ञानं नैव कदाचिद्भवत्यत उक्तमृषिभिस्तर्किरिति ॥

तथेश्वरस्य त्रिकालज्ञत्वात् । नवीनापेक्षया प्राचीनैः प्राचीनापेक्षया नवीनैश्च विद्वद्भिरीड्य इत्युक्ते सति न दोषो भवति वेदस्य सर्वज्ञोक्तत्वात् । प्रथममन्त्रभाष्ये निरुक्तव्याकरणादिरीत्या देवशब्दार्थ उक्तः सोऽत्र द्रष्टव्यः ।

एतन्मन्त्रार्थः सायणाचार्यादिभिरन्यथोक्तः ॥ तद्यथा । पुरातनैर्भृग्वंगिरःप्रभृतिभिः । नूतनैरुतेदानींतनैरस्माभिरपि स्तुत्यः ॥ देवान् हविर्भुज आवक्षतीत्यन्वयेदं व्याख्यानमस्ति, तद्ह्यशुद्धपाठस्थैश्च कृतमिंगलैंडभाषायां वेदार्थयत्नादिषु च व्याख्यानमप्यसमंजसम् । कुतः । ईश्वरोक्तस्यानादिभूतस्य वेदस्येदृशं व्याख्यानं क्षुद्राशयं गम्यते, तथा निरुक्तशतपथादिग्रंथाशयविरुद्धं चातः ॥ २ ॥

भावार्थ

(अग्निः) अग्नि जो परमेश्वर (पूर्वेभिर्ऋ०) प्राचीन और नवीन ऋषि जो प्राण, मन्त्रार्थ जानने वाले जो विद्वान् और तर्क हैं। अर्थात् स्थूल जगत् का

कारण जो ईश्वर की सामर्थ्य प्रकृति और परमाणु रूप है, इन में जो सूक्ष्म प्राण हैं, उनका नाम प्राचीन है और जो प्राण सदैव निर्विकार बने रहते हैं। जो ब्रह्माण्ड को धारण करने वाले हैं, उनका 'पूर्वेभिः' इस पद से ग्रहण होता है और कार्य जो स्थूल जगत् तथा शरीर में जो प्राण हैं तथा पहिले और वर्तमान में जो विद्वान् हैं, उन पूर्व हो गये विद्वानों के जो तर्क थे और आत्मा में जो तर्क हैं, उनको भी 'पूर्वेभिः' तथा "नूतनैः" इन पदों से ग्रहण करते हैं। क्योंकि ये सब शरीर के साथ ही उत्पत्ति, वृद्धि और क्षय को प्राप्त होते हैं।

इन दोनों प्राणों के साथ अभ्यास करने से इन के बीच ही परमेश्वर प्राप्त होता है। तथा मन्त्रार्थ जानने वाले प्राचीन और नवीन ऋषियों को भी स्तुति करने के योग्य ईश्वर ही है। सो जगदीश्वर अपनी कृपाकटाक्ष से शुद्ध सद्विद्यादि गुण, श्रेष्ठ इन्द्रियां, उत्तम ऋतु और सब प्रकार के जो उत्तम भोग हैं कि जिन गुणों से परमानन्द मोक्ष प्राप्त होता है।

जिन इन्द्रियों से धर्माचरण, विद्या और उत्तम सुख होता है, दिव्य ऋतु=जिनमें परमार्थ और व्यवहार के दोनों सुख बढ़ें। दिव्य भोग=जो मोक्ष और व्यवहार में भी होते हैं।

(स देवान् एह वक्षति) इस संसार, इस जन्म, और हमारे आत्मा में, हे परमेश्वर! कृपा से आप हम लोगों को सब प्रकार से उन सुखों को प्राप्त करो [प्रदान करो]।

प्राण, तर्क और मन्त्रार्थ के जानने वाले विद्वानों को ऋषि कहते हैं। सद्विद्यादि जो दिव्य गुण और ऋतु आदि को देव कहते हैं। इस में शतपथादि ग्रन्थों का लेख संस्कृत में लिखा है, सो देख लेना॥

इस मन्त्र का सायणाचार्य आदि लोगों ने अन्यथा वर्णन किया है. इस का खण्डन संस्कृत में देख लेना। तद्वत् हावटन विलसन साहेब कृत और वेदार्थयत्न में भी इस मन्त्र का अर्थ ठीक नहीं किया है। वेदार्थयत्नवाले ने जो यह बात लिखी है कि यह मन्त्र लक्ष्य में रखने के योग्य है। अर्थात् वेद ईश्वरकृत सनातन नहीं है। उनका ऐसा अभिप्राय देखने में आता है। सो उन की बुद्धि के अनुसार ही है। यह प्रमाण युक्त नहीं।

अथ द्वितीयोर्थः

प्राक्तनैर्नवीनैः प्रत्यृषिभिः शिल्पविद्याविद्भिस्तैः पूर्वोक्तैर्ऋषिभिरयमेवाग्निरन्वेष्टव्यगुणोस्ति। कुतः। सोयमग्निरिह पदार्थविद्यायां कलाकौशलस्य विमानादीनां यानानां दिव्यगुणानावहति। अतोऽहर्निशमाकाङ्क्षेच्चेति॥ २॥

भाषार्थ

(अग्निः) शिल्प विद्या के जानने तथा शिल्पविद्या के सिद्ध करने की इच्छा रखते वाले, उसको पढ़ाने और पढ़ने वाले जो ऋषि अर्थात् कारीगर लोग हैं, वे अग्नि के गुणों के सुतर्क पूर्वक खोज से पदार्थविद्या को सिद्ध करते हैं और करें; क्योंकि पदार्थ विद्या में कला कौशल विमान आदि सवारियों के परमोत्तम गुणों की प्राप्ति अग्नि से ही होती है। इससे अग्नि के गुणों के खोजने में सब लोग सदा प्रयत्न करें॥२॥

अथ तृतीयमन्त्रमाह

मूलः—

अग्निना रयिमश्नवत्पोषमेव दिवे दिवे। यशसं वीरवत्तमम्॥३॥

प०—अग्निना। रयिं। अश्नवत्। पोषम्। एव। दिवेदिवे। यशसम्। वीरवत्तमम्॥ ३॥

भाष्यम्

(अग्निना) विज्ञानानन्दस्वरूपेण दयालुना सद्धर्मानुष्ठानयोगाभ्यासपरमप्रीत्युपासनोपासितेनैवाग्निनेश्वरेण विद्याधर्मयुक्तः सन् जीवः (रयिं) धर्ममोक्षविद्याचक्रवर्तिराज्यारोग्यादिस्वरूपं धनम्। (अश्नवत्) प्राप्नुयात् प्राप्नोति वा नान्यथेति निश्चयः। कथं भूतं तद्धनम्। आत्मनः शरीरेन्द्रियाणां (दिवे दिवे) प्रतिदिनं नित्यम्। (पोषमेव) पुष्टिकरमेव भवति, तथा (यशसम्) यशः सत्कीर्तिवर्धकं शिष्टाचारादिकीर्त्तिमच्च। तथा (वीरवत्तमम्) प्रतिदिनं बुद्धिबलवीर्यशौर्य्यादिगुणयुक्ताः पुत्रबन्धुमित्रभृत्यादयो वीरा भवन्ति यस्मिन्धने तद्वीरवत अतिशयेन वीरवत् इति वीरवत्तमम्॥

अयमाशयः परमेश्वरोपासनेन विना स्थिरं नित्यं च सुखं कदाचित्कस्यापि नैव भवतीति॥

रयिमिति धननामास्ति निघंटौ।

सायणाचार्येण यज्ञहोमसम्बन्धमात्रेणैवेयमृग्व्याख्याता। अत्रेश्वरान्यपदार्थविद्यात्यागात्तद्व्याख्यानं सम्यङ् नास्तीति विज्ञेयम्।

तथा वेदार्थयत्नकर्तृडाक्तरविलसनाख्यकृतमपि च तादृशमेवास्ति। अस्य स्वल्पविषयत्वात्। मुख्यार्थस्येश्वरस्य त्यागादस्पष्टार्थत्वाच्च विदुषां महाहृदकरमीदृशं व्याख्यानं नैव भवतीति दिक्॥ ३॥

भाषार्थ

(अग्निना) अग्नि जो विज्ञान और आनन्दस्वरूप है और दयाकरने वाला है, सत्य धर्म का आचरण, योगाभ्यास जो समाधि का करना तथा परमेश्वर में अत्यन्त प्रीति और विज्ञान से जो दृढ़ विश्वास का यथावत् होना, इस प्रकार की उपासना से जो प्रसन्न होता है, उस अग्नि ईश्वर की कृपादृष्टि से सत्यविद्या और सत्य धर्माचरण से युक्त जो जीव, सो (रयिम्) जो धर्म, मं त्रविद्या और चक्रवर्ती राज्य का होना, इस धन को (अश्नवत्) प्राप्त होता है। इस से दूसरे प्रकार से नहीं।

वह धन कैसा है? (पोषमेव दिवे दिवे) आत्मा, मन, शरीर और इन्द्रिय इनको नित्य पुष्टि और आनन्द कराने वाला है, तथा (यशसम्) अर्थात् दिन दिन के प्रति सत्कीर्त्ति का बढ़ाने वाला, और जिस धन से शिष्टाचार और सब मनुष्यों का उपकार हो। तथा (वीरवत्तमम्) बुद्धि, बल, शरीर, पराक्रम, शूरता, धीरज आदि गुणवाले जो हैं, वे पुत्र, भाई, मित्र और भृत्यादि वीर पुरुष प्राप्त हों, जिस धन से, उस धनको वीरवत् कहते हैं। और जो पूर्वोक्त गुणोंसे अत्यन्तयुक्त हो, उस धन को वीरवत्तम कहते हैं।

इसका यह अभिप्राय है कि विना परमेश्वर की उपासना से संसार में स्थिर जो सुख और मोक्ष में जो नित्यसुख, उसको कोई भी प्राप्त नहीं हो सकता।

सायणाचार्य ने अग्निमीडे आदि मन्त्रों का अग्नि में आहुति डालना मात्र प्रयोजन लिखा है। इस अर्थ में ईश्वर और होम से भिन्न अन्य पदार्थ-विद्या के त्याग से वह व्याख्यान अच्छा नहीं है। वेदार्थ-यत्न में और डाक्टर विलसन साहेब का किया व्याख्यान भी वैसा ही है। तथा सायणाचार्य के व्याख्यान बहुत अल्पार्थ हैं। क्योंकि ये सब व्याख्यान से मुख्य अर्थ जो ईश्वर उसके त्याग और निश्चितार्थ नहीं होने से विद्वानों को प्रिय और साधारण को भी यथावत् उपकारक नहीं हो सकता॥३॥

॥ अथ द्वितीयोर्थः ॥

भौतिकाग्निनिमित्तेन शिल्पविद्याचिकीर्षुः पुरुषः सुवर्णरत्नादि राज्यादि च पूर्वोक्तविशेषणयुक्तं रयिं धनमश्नवत् प्राप्नोतु प्राप्तुमिच्छेत् शिल्पविद्यायामग्नेरेव मुख्य साधनत्वात्॥३॥

॥ भाषार्थ ॥

प्रत्यक्ष जो यह अग्नि इसके विना उत्तम कारीगरी सिद्ध नहीं हो सकती। कारीगरी के विना धन और राज्य के जो उत्तम व्यवहार तथा पदार्थ हैं, वे सब मनुष्यों को यथावत् प्राप्त नहीं हो सकते। क्योंकि उत्तम कारीगर के होने में अग्नि ही मुख्य साधन है। इस अग्नि से बिजली आदि पदार्थों को सिद्ध करके अनेक विमान आदि विद्या रच लेना चाहिये। इस से पृथिवी, जल और आकाश मार्ग में चलने के लिये विमान आदि विद्या रचनी सब मनुष्यों को उचित है।

अथ चतुर्थो मन्त्रः

मूलः—

अग्ने यं यज्ञमध्वरं विश्वतः परिभूरसि। स इद्देवेषु गच्छति॥४॥

प०—अग्ने। यम्। यज्ञम्। अध्वरम्। विश्वतः। परिभूः। असि। सः। इत्। देवेषु। गच्छति॥४॥

॥ भाष्यम् ॥

(अग्ने) हे अनन्तशक्ते परमात्मन्नग्ने! त्वं (विश्वतः) सर्वतः (परिभूरसि) व्याप्तः सन् (यं) यज्ञं (अध्वरम्) अहिंसनीयमर्थात्सर्वथा रक्षयितव्यं (यज्ञं) किं वा अग्निहोत्राद्यश्वमेधपर्यंतं यज्ञं तथा भवत्स्तुतिप्रार्थनोपासनाख्यं च, त्वमेव पालितवानसि, स एव यज्ञः परिपूर्णः सन्निष्टफलप्रापको भवति। अस्य यज्ञस्यानुष्ठातुर्जनस्य भवानेव रक्षकोस्ति। (सः)

तस्मात् स मनुष्यः (देवेषु) विद्यादिदिव्यगुणेषु, विद्वत्सु वा प्रवर्त्तमानः सन् (इत्) सुखेनैव। (गच्छति) परमानन्दं प्राप्नोति न चान्यथेति॥

(इत्) अत्र निश्चयार्थोस्ति॥ अयमपि मन्त्रः सायणाचार्यादिभिरन्यथा व्याख्यातः भौतिकाग्नेर्जडत्वाद्यज्ञरक्षणं न संभवति सर्वव्यापकत्वं चातः। विश्वतः परिभूरसीत्यग्नेरीश्वरस्यैव विशेषणत्वात्। एवमेव डाक्तरविलसनाख्यकृतं वेदार्थयत्नाख्यं च व्याख्यानमस्य मन्त्रस्य सम्यङ्नास्तीति गम्यते॥ ४॥

॥ भाषार्थ॥

(अग्ने) हे परमेश्वर अग्ने! (विश्वतः परिभूरसि) सब संसार में परिपूर्ण होके (यं यज्ञमध्वरम्) रक्षा करने के योग्य वह जगत्रूप जो यज्ञ, अथवा अग्निहोत्र से लेके अश्वमेध पर्यन्त जो यज्ञ, तथा आप की स्तुति, प्रार्थना और उपासना का यथावत् करना जो यज्ञ, इन तीन प्रकार के यज्ञ का रक्षण आप ही कर रहे हो। इस कारण से यज्ञ परिपूर्ण हो के सुखरूप फल को सदा करता है। जो मनुष्य इस यज्ञ के अनुष्ठान करने वाला है। उसकी भी रक्षा करने वाले आप ही हो।

(स इद्देवेषु) सो मनुष्य विद्या, मोक्षादि दिव्यगुणों में और श्रेष्ठ विद्वानों के संग करने में प्रवर्तमान् होके सुखपूर्वक ही आनन्द को (गच्छति) प्राप्त होता है, अन्य प्रकार से नहीं।

इस मन्त्र को भी सायणाचार्य और डाक्टर विलसन साहेब ने तथा वेदार्थयत्नादि में अन्यथा व्याख्यान किया है। क्योंकि जड़ पदार्थ को रक्षा करने का ज्ञान ही नहीं होता और वह सर्वत्रव्यापक भी नहीं हो सकता। इससे उनका व्याख्यान ठीक नहीं॥४॥

अथ द्वितीयोर्थः

(अग्ने) हे परमेश्वर! भवद्रचितगुणोयमग्निः, शिल्पक्रियामयं (यं यज्ञमध्वरं विश्वतः परिभूः०) सर्वतो व्याप्तवानस्ति, यः परितः सर्वेषां शिल्पविद्यासाधनानामुपरि विराजमानः सन् सर्वशिल्पविद्यायाः प्रधानसाधनं वर्त्तते तमग्निं त्वं रचितवानसि। एवं तेनाग्निना निमित्तभूतेन यो मनुष्यः शिल्पविद्यां गृह्णाति (स इद्देवेषु) स एव पुरुषो दिव्येषु द्योतमानेषूत्तमेषु भोगेषु स्थिरः सन् परमानन्दं गच्छति प्राप्नोतीत्यर्थः॥४॥

भाषार्थः

(अग्ने) जो कारीगरी क्रिया का मुख्य हेतु है। जिससे विमान आदि यान सिद्ध होते हैं। जिनसे मार्ग में शीघ्र गमन कर सकें। हे परमात्मा! उस अग्नि को अनेक गुणयुक्त आपने ही उत्पन्न किया है। इसी अग्नि के गुणों के ज्ञान से जो मनुष्य पदार्थविद्या को सिद्ध करता है, वही दिव्य भोगों में स्थिर होके सदैव अत्यन्त सुखी रहता है॥४॥

॥ अथ पंचमी ऋक्॥

मूल—

अग्निर्होता कविक्रतुः सत्यश्चित्रश्रवस्तमः। देवो देवेभिरागमत्॥५॥

प०—अग्निः। होता। कविक्रतुः। सत्यः। चित्रश्रवस्तमः। देवः। देवेभिः। आ। गमत्॥५॥

॥ भाष्यम्॥

(अग्निः) पूर्वोक्तविशेषणयुक्तः परमेश्वरोग्निः। (होता) सर्वोत्तमपदार्थानां दाता पृथिव्यादीनामादाता ग्रहीता यो धारणकर्त्तास्ति। (कविक्रतुः) कविश्चासौ क्रतुश्च स कविक्रतुः। कविः=सर्वज्ञः क्रांतप्रज्ञः सर्वेषां जीवानां बुद्धेः क्रमिता तद्गमे न कस्यापि बुद्धिः क्रमते सर्वेषां बुद्धेः प्रभुत्वात्। क्रतुः=सर्वजगत्कर्त्ता। (सत्यः) अस्तीति सत् सति साधुः सत्यः विनाशरहितः। (चित्रश्रवस्तमः) चित्रमाश्चर्यं श्रवः श्रवणं यस्य स चित्रश्रवाः। अतिशयेन चित्रश्रवाः इति चित्रश्रवस्तमः॥

इत्यत्रार्थे प्रमाणम्—

श्रवणायापि बहुभिर्यो न लभ्यः
शृण्वन्तोपि बहवो यन्न विद्युः।
आश्चर्यो वक्ता कुशलोस्य लब्धा—

आश्चर्यो ज्ञाता कुशलानुशिष्टः ॥

कठोपनि० वल्ली ॥२॥

इत्यनेन आश्चर्यश्रवणत्वं परमेश्वरे एव घटते नान्यत्रेति।

(देव:) स जगदीश्वरः सर्वजगत् प्रकाशकः (देवेभिरागमत्) दिव्यैः सर्वज्ञपरमानन्दादिभिर्गुणैः सह, अस्माकं हृदयेऽस्मिन्संसारे च प्रकाशमागमत्, आगच्छतु। स्वसामर्थ्येन कृपया च सर्वथा प्रकाशितो भवत्विति प्रार्थ्यतेऽस्माभिः ॥

कविसत्यशब्दार्थौ यास्केनाप्येवं व्याख्यातः।

कविः क्रान्तदर्शनो भवति कवतेर्वा प्रसुवति भद्रमित्यादि ॥

नि० अ० १२। खं० १३॥

कुङ् शब्दे, कु शब्दे, कवते, कौति वा सर्वविद्यायुक्तं वेदशास्त्रमुपदिशति स कविरीश्वरः। प्रसुवति भद्रं=भद्रैश्वर्योपादनदानाभ्याम्।

सत्यं कस्मात्सत्सु तायते सत्यभवं भवतीति वा इति ॥

नि० अ० १२। खं० १३॥

सत्सु गुणेषु, भोगेषु, पदार्थेषु वा सन्तानयति पालयति वा सर्वान् जनान् यः। सत्यभ०=सताज्ञानेन योगेन धर्मेण वेदैर्वा प्रभवः प्रकटता यस्य च ॥ अतः स परमेश्वर एव सत्यो भवितुमर्हति नान्यः।

अयमपि मन्त्रः सायणाचार्येण तथा तदनुसारिभिरध्यापकविलसनाख्यादिभिश्च न सम्यग्वर्णितः। कुतः! अस्य मन्त्रस्यार्थो होममात्रसंबन्धेनैव वर्णितत्वात्। एवमेव प्राकृतभाषाकृताम्प्यर्थोऽन्यथैवास्तीति बोध्यम् ॥५॥

॥ भाषार्थ ॥

(अग्निः) पूर्वोक्त विशेषणयुक्त जो परमेश्वर है। (हेतः) जो सत्यविद्यादि शुभगुण और चक्रवर्तिराज्य ऐश्वर्य का देनेवाला है, तथा जो पृथिव्यादि लोकों का धारण करने वाला है। (कविक्रतु) जो सबका जानने वाला है और सब की बुद्धि का अध्यक्ष है, उसको कवि कहते हैं। जिसके सामने सब की बुद्धि अल्प हो जाती है। क्योंकि वह सब की बुद्धियों का प्रभु है, तथा क्रतुः=जो सब जगत् का करने वाला है (सत्यः) जिसका नाश कभी नहीं होता। (चित्रश्रवस्तमः) जिसका कथन, श्रवण और स्वरूप अत्यन्त अद्भुत है। (देवो देवेभिरागमत्) उस परमेश्वर की सत्यभाव से हम लोग भक्ति करते हैं। वही जगदीश्वर एक अद्वितीय देव है। क्योंकि प्रकाश करने वाले जो सूर्यादि सब लोक हैं, उनका भी प्रकाशक एक वही परमेश्वर है और उसका प्रकाश करने वाला दूसरा कोई नहीं। किन्तु वह तो आपसे आप ही प्रकाशित है।

वह परमेश्वर जो सर्वज्ञ और परमानन्दादि दिव्य उत्तम गुण हैं, उनके सह वर्तमान हमारे हृदय और इस संसार में कृपा करके प्रकाश को प्राप्त हो, ऐसी प्रार्थना उसको हम लोग करते हैं, जिससे वह अपनी कृपा करके जगत् के बीच में सर्वदा प्रकाशित हो।

श्रवणाया०=जिस परमेश्वर को सुनने को बहुत मनुष्य प्रवृत्त होते हैं, परन्तु उनमें जो विद्वान् सत्याचरण करने वाले हैं, वे ही परमेश्वर को सुन के प्राप्त होते हैं। और जो इस प्रकार के नहीं हैं वे परमेश्वर को सुन के भी प्राप्त नहीं होते। क्योंकि इस परमेश्वर का यथार्थ उपदेश करने वाले का मिलना कठिन है। तथा ब्रह्म जानने वाले से परमेश्वर को सुन के जानने वाला भी कठिन है। सो जो कुशल अत्यन्त चतुर है, वही इस ब्रह्म को प्राप्त होता है। क्योंकि इसका जानने वाला अत्यन्त अद्भुत है और इस कुशल पुरुष के उपदेश से भी जो इस ब्रह्म को यथावत् जानता है, वह भी इस जगत् में आश्चर्य रूप ही है। इस कारण से परमेश्वर को चित्रश्रवस्तम इस मन्त्र में विशेषण दिया है।

तथा—सत्सु ता०=जो सत्य गुण, सत्य भोग, सत्य पदार्थ और सत्य व्यवहार हैं, इनमें ही जो मनुष्य प्रवर्तमान हैं, उनको जो सुख में विस्तृत करता है, किंवा उनका जो पालनकर्त्ता है, इस से परमेश्वर का सत्य नाम है।

तथा—सत्यप्रभवं=जो सत्यज्ञान, सत्य योग,

सत्य धर्म और सत्य जो वेद हैं, इनसे ही जिसकी प्रकटता होती है, इसलिये परमेश्वर का नाम सत्य है।

इस मन्त्र का भी सायणाचार्यादि, अध्यापक विलसन साहेब ने और वेदार्थयत्न में भी अच्छी रीति से व्याख्यान नहीं किया है॥५॥

॥ अथ द्वितीयोऽर्थः ॥

(अग्निर्होता) अग्निर्यौतिकोऽश्वः। होता सर्वशिल्पविद्यागुणधारकोऽस्ति। (कविः) शिल्पविद्यायाः क्रान्तदर्शनः क्रमप्रकाशकः। (क्रतुः) शिल्पविद्या क्रियते येन सोऽयं क्रतुः। (सत्यः) सति शिल्पविद्याव्यवहारे साधुर्यः स सत्योऽग्निः। (चित्रश्रवस्तमः) विद्युदादिस्थगुणानां चित्रमद्भुतं श्रवः श्रवणं यस्मिन्सः। अतिशयेन चित्रश्रवा इति चित्रश्रवस्तमः। (देवः) शिल्पविद्यादिगुणद्योतकः सोऽग्निः। (देवेभिः) शिल्पविद्याद्योतकैर्गुणैर्दिव्यैः सह वर्त्तमानो योऽग्निरस्ति सः। हे परमेश्वर! भवत्कृपया (आगमत्) अस्माभिर्ज्ञातो भवतु। येन सर्वां शिल्पविद्यां वयं लभेमहि॥५॥

॥ भाषार्थ ॥

(अग्निर्होता) जिस अग्नि का नाम अश्व है जो सब शिल्पविद्या के गुणों का धारण करने वाला है। (कविक्रतुः, कविः=जो शिल्प विद्या का प्रकाश करने वाला और क्रतुः=कि शिल्पविद्या जिससे की जाती है। (सत्यः) कारीगरी में जो साधु उत्तम साधन है। (चित्रश्रवस्तमः) बिजुली आदि में अत्युत्तम जो वेगादि गुण हैं, वे जिसमें सुनते हैं और जिसमें अत्यन्त अद्भुत सामर्थ्य ईश्वर ने रखा है। (देवोदेवेभिः०) जो अग्निवेदादि गुणों का प्रकाश करने वाला है, सो हमारे शिल्पविद्या व्यवहार में अत्यन्त उपकार करने वाला आप की कृपा से हो। जिससे शिल्पविद्या में जो दिव्य गुण है उनको हम लोग यथावत् सिद्ध करके अत्यन्त सुखी हों।

इति प्रथमेऽध्याये प्रथमोवर्गः॥

॥ अथ षष्ठो मन्त्रः ॥

मूल—

यदंग दाशुषे त्वमग्ने भद्रं करिष्यसि। तवेत्तत्सत्यमंगिरः॥६॥

प०—यत्। अंग। दाशुषे। त्वम्। अग्ने। भद्रं। करिष्यसि। तव। इत्। तत्। सत्यम्। अंगिरः॥६॥

॥ भाष्यम् ॥

(यदंग) हे अग्ने प्रापणीयेश्वर! हे अंग सर्वमित्र! तुभ्यं सर्वपदार्थदात्रे परमेश्वराय, यो मनुष्य आत्मप्राणाद्युत्तमपदार्थान्दत्तवानस्ति, तस्मै (दाशुषे) त्वय्यत्यंतप्रेमकारिणे मनुष्याय। (भद्रं) भजनीयं परमानन्दस्वरूपं मोक्षाख्यं कल्याणं सुखं च। (त्वमग्ने) त्वमेव। (करिष्यसि) करोषि वेति निश्चयो नः (तवेत्तत्०) हे अंगिरः प्राणानां रसभूतपरमेश्वरेदं सत्यं व्रतं शीलं तवैवास्ति न कस्यचिदन्यस्येति, त्वया यद्भद्रं क्रियते तदेव सत्यमविनाशिरूपमस्ति नान्यदीदृशमिति विजानीमः॥

यास्काचार्येण भद्रशब्दार्थ एवं वर्णितः—

भद्रं भगेन व्याख्यातं भजनीयं भूतानामभिद्रवणीयं भवद्रमयतीति वा भाजनवद्वा इति।

नि० अ० ४। खं० ६॥

प्राणो वा अंगिराः॥

श० कां ६। अ० १॥

आंगिरसो अंगानार्थं हि रसः।

प्राणो वा अंगानार्थं रसः॥

श० कां० १४। अ० ३॥

यजमानो वै दाश्वान् इति।

श० कां ७। अ० ४॥

अयमर्थः। यत्र दुःखं लेशमात्रमपि नास्ति, यन्मुक्त्याख्यं परमसुखं सत्यमस्ति तदत्र विज्ञेयम्।

परमेश्वरं यजते स यजमानो विद्यादिदानशीलः स दाश्वान्। अंगानां पृथिव्यादीनां सारभूतोन्तर्यामी परमेश्वरः सर्वस्य प्राणभूतत्वाद्रसोस्तीति बोध्यम्॥

अतः सायणाचार्य वेदार्थयत्नकृताध्यापकविलसनादिनिश्चायं मन्त्रो यथावन्नैव व्याख्यात इति विज्ञायते॥६॥

भाषार्थ

(अग्ने) हे प्राप्त होने के योग्य ईश्वर अग्ने! (अंग) हे अंग, सबके परममित्र! (दाशुषे) जो मनुष्य आपको प्राण और आत्मा का समर्पण करता है, जो आप में अत्यन्त प्रेम करने वाला है, (भद्रम्) परमानन्दस्वरूप जो मोक्ष का सुख, सो उस मनुष्य को आप ही देने वाले हो। (अंगिरा) हे प्राणों के प्राण ईश्वर! जो प्राणवत् प्रिय सुख है, सो आप की कृपा से ही होता है। क्योंकि (तवेत्तत्सत्यम्) वह आप का ही स्वाभाव है, जो सत्य सुखों को ही देना, यह सामर्थ्य अन्य किसीका नहीं। जो आपका दिया सुख है, वही एक नित्य है। इससे दूसरा कोई ऐसा सुख नहीं हैं।

इसकी व्याख्या निरुक्त और शतपथ के भाष्य में लिखी है, सो देख लेना। इससे यह जानना कि सायणाचार्य वेदार्थयत्न तथा डाक्टर विलसन साहेब आदि के व्याख्यान में इस मन्त्र का अर्थ ठीक नहीं किया है ॥६॥

॥ अथ सप्तमो मन्त्रः ॥

मूल—

उपत्वाग्ने दिवेदिवे दोषावस्तर्धिया वयम्। नमो भरन्त एमसि ॥७॥

प०—उप। त्वा। अग्ने। दिवेदिवे। दोषाऽवस्तः। धिया। वयम्। नमः। भरन्त। आ। इमसि ॥

॥ भाष्यम् ॥

(उप त्वाग्ने) हे अग्ने पूज्यतमेश्वर! (दिवेदिवे) प्रतिदिनं, नित्यं। (धिया) बुद्धया। (त्वा) त्वाम्। वयं (उपैमसि) तव उप सामीप्यं आ सर्वतः, इमः प्राप्नुमः। तथा (दोषावस्तः) अहर्निशं निरंतरं। (भरन्तः) ज्ञानेन प्रेम भक्तिं धारयन्तः सन्तो, (वय) त्वा (नमः) नमस्कुर्मः। यतो भवान् सद्योस्मान्प्राप्नुयात्। भवद् प्राप्त्या वयं सुखिनो नित्यं भवेम ॥

अत्र मन्त्र व्याख्याने सायणाचार्याध्यापक विलसनादिभिर्भौतिकाग्निमात्रस्यैव गृहीतत्वात्तद्व्यख्यानमन्यथास्ति। कुतो, भौतिकाग्नेरनायासेन होम मात्रे प्राप्तत्वान्नमस्करणीया भावाच्चेति ॥७॥

॥ भाषार्थ ॥

(उप त्वाग्ने) हे अग्ने ईश्वर! हम को एक पूज्य आप ही हो। हम लोग (धिया) बुद्धि जो ज्ञान है, इस से (दिवेदिवे) सब दिन के लिये, आप के समीप को (त्वामुपैमसि) शरणागतिको प्राप्त होते हैं। (दोषावस्तः) तथा दिन और रात्रि में, सत्यभक्ति-पूर्वक आप को (वयम्) हम लोग, नित्य ही (नमोभरन्तः) नमस्कार करते हैं। जिस से कृपा करके आप हम को शीघ्र प्राप्त हों। आप की प्राप्ति से हम लोग निरन्तर सुखी हों ॥

सायण, डाक्टर विलसन और वेदार्थयत्नादि के कर्त्ताओं ने इस अर्थ को जाना भी नहीं ॥ ७ ॥

॥ अथ द्वितीयोर्थः ॥

(उप त्वाग्ने) हे पूर्वोक्त विशेषणयुक्तेश्वराग्ने! भवन्तमुपगता नमस्कुर्वन्तः कथयन्तश्च भवन्तं नित्यं प्रार्थयामः। भवत्प्रार्थनया त्वद्रचितस्य भौतिकाग्नेः सकाशाद्वायुवृष्टिशुद्धिकरं यज्ञानुष्ठानं शिल्पविद्यामयं च प्राप्नुयाम। एतदर्थं निरन्तरं नमोस्तु ते ॥ ७ ॥

॥ भाषार्थ ॥

(उप त्वाग्ने) हे परमेश्वर अग्ने! हम लोग आपके शरणागत हैं। नित्य आपको नमस्कार और प्रार्थना करते हैं कि जो जो आपने भौतिक अग्नि में गुण रखे हैं, उन गुणों से हम लोग सुगन्धि आदि पदार्थों का होम करके वायु तथा वर्षा के जल की शुद्धि करें। तथा शिल्प विद्या को भी प्राप्त हों। इस लिये और मोक्षादि सुख के लिये भी आप को निरन्तर नमस्कार करते हैं ॥ ७ ॥

॥ अथाष्मो मन्त्रः ॥

मूल—

राजन्तमध्वराणां गोपामृतस्य दीदिविम्। वर्धमानं स्वे दमे ॥८॥

प०—राजन्तम्। अध्वराणाम्। गोपाम्। ऋतस्य। दीदिविम्। वर्धमानम्। स्वे। दमे ॥८॥

॥ भाष्यम् ॥

एवमीत्यनुवर्त्तते ॥ (अध्वराणाम्) अग्निष्टोमादि यज्ञानां तत्कर्तॄणां धर्मात्मानां मानवानां च। (गोपाम्) रक्षकं। तथा (राजन्तम्) सूर्यादीनां लोकानां मध्ये योगिनामात्मनश्च मध्ये धारकान्तर्यामितया राजन्तं सदा प्रकाशमानं। (ऋतस्य दीदिविम्) सत्यविद्यामयस्य वेदचतुष्टयस्य मुक्तस्य च दीदिविम् सम्यक् प्रकाशकं। तथा (स्वे) स्वकीये। (दमे) परमोत्कृष्टे पदे। (वर्धमानम्) अत्यन्त वृद्धिमन्तम्। एवंभूतं परमेश्वरमग्निं त्वां वयं सदैवोपैमसि। भवत्परमपदमोक्षप्राप्तये परमप्रेम्णा सर्वतः सदा भवन्तं जगदीश्वरमेवोपाप्नुमः। यतोऽस्मिन्नेव जन्मनि भवत्कृपयास्माकं निश्चितो मोक्षो भवेदिति नित्यमिच्छामः॥८॥

॥ भाषार्थ ॥

(अध्वराणां गोपाम्) अध्वर जो अग्निष्टोम आदि यज्ञ और इन यज्ञों के करने वाले जो धर्मात्मा मनुष्य हैं, उनकी जो यथावत् रक्षा करने वाला है। तथा (राजन्तम्) सूर्य आदि जो लोक उनके बीच में और योगियों के आत्मा के बीच में, जो धारण करने वाला और अन्तर्यामी रूप से प्रकाशमान् है। तथा (ऋतस्य दीदिविम्) सत्यविद्यास्वरूप जो चारों वेद हैं, उनका और मोक्ष का जो प्रकाश करने वाला है। (वर्धमानं स्वे दमे) स्वे=अपना जो, दमे=परमपद है, उसमें वर्धमानम्=सब सामर्थ्य से युक्त होके जो सदा विराजमान है, और जो मनुष्य मोक्ष को प्राप्त होते हैं, उनको उस अपने परमपद में, विज्ञान और आनन्द आदि गुणों से जो सदा बढ़ाने वाला है, उस परमात्मा को मोक्ष आदि सुखों की प्राप्ति के लिये (उपैमसि) हम लोग प्राप्त होते हैं। अर्थात् हे परमेश्वर! सत्य प्रेम-भक्ति से हम लोग आपको सदा प्राप्त रहें कि आप और आपकी आज्ञा से विरुद्ध हम लोग कभी न हों। जिससे हम लोग को आपकी प्राप्ति से मोक्ष आदि सुख इसी जन्म में प्राप्त हो॥ ८॥

॥ अथ नवमो मन्त्रः ॥

मूल—

स नः पितेव सूनवेऽग्ने सूपायनो भव।
सचस्वा नः स्वस्तये॥ ९॥

प०—सः। नः। पिताऽइव। सूनवे। अग्ने। सुऽउपायनः। भव। सचस्व। नः। स्वस्तये॥९॥

भाष्यम्

(सः) यः। अग्निमीडे पुरोहितमित्यादि मन्त्रेषु पुरोहितादिविशेषणैः प्रतिपादितोऽग्नि संज्ञः परमेश्वरः सोत्र गृह्यते। (अग्ने) हे परमात्मन्! (नः) अस्मान्। (सूपायनः) स्वकृपया सुखेनैव प्राप्तस्त्वं भव। तथा हे परमेश्वराभिधाग्ने! (नः स्वस्तये) एहिक पारमार्थिक सुखायास्मान् स्वकृपया। (सचस्व) समवेतान् कुरु। अर्थात् तत्सुखेन सह वर्त्तमानानस्मान् सदा कुरु। एवं तत्सुखस्य यथावत् सिद्ध्यर्थं सचस्व त्वं नित्यं समवेतः कृपयानुकूलो भव। कस्मै कइव।। (पितेव सूनवे) यथा स्वसन्तानाय स्वप्रजायै अत्यन्त प्रेम्णानुकंपयमानः संतान सुखाय प्रवर्त्तमानः पिता इव। कुतः। भवानेवास्माकं पितास्त्यतः॥

वर्गद्वयस्थैर्नवभिर्मन्त्रैरग्निहोत्राद्यश्वमेधपर्यन्तेषु वायुवृष्टिजलशुद्धिप्रयोजनेषु यज्ञेषु युक्तिप्रमाणसिद्धानां कर्मणामनुष्ठानं कर्तुं योग्यमस्ति, परन्तु, सूत्रब्राह्मणग्रन्थेषु यादृशो विनियोगः प्रतिपादितः सोऽत्र तदुक्तरीत्या कार्य्यः॥ ९॥

भाषार्थ

(सः) अग्निमीडे इत्यादि आठ मन्त्रों में पुरोहित आदि विशेषणों से जिस परमेश्वर का कथन किया है, उसीका 'स' शब्द से ग्रहण होता है (अग्ने) हे परमेश्वर अग्ने! अपनी कृपा से ही (नः) हमको प्राप्त हो तथा (सूपायनः) इस लोक और परलोक के सुख के लिये (नः) हमको (सचस्व) संयुक्त कर। तथा आप भी हमारे सहायकारी नित्य रहो। तथा (स्वस्तये) सद्विद्यादि शुभ गुणों में मोक्ष आदि सुख के लिये हमको सदा युक्त कर। जिससे स्वस्ति=जो परम सुख सो सदा हम को प्राप्त हो। जैसे पिता अत्यन्त प्रेम से अपने सन्तानों को सुख देता है, वैसे ही आप हमको पुरुषार्थ से आनन्द युक्त करके नित्य पालन करो। क्योंकि आप ही हम लोगों के पिता हो। इससे हमको सुख देने वाले एक आप ही हो॥ ९॥

इति प्रथमस्य अष्टकस्य प्रथमेऽध्याये द्वितीयो वर्गः॥

प्रथमं सूक्तं समाप्तम्॥